॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जुलाई २०१५

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५३
अंक ७

वार्षिक ८०/– एक प्रति १०/–

५ वर्षों के लिये – रु. ३७०/–
आजीवन (२० वर्षों के लिए) – रु. १,४००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक ११०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ५००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द की यह मूर्ति विवेकानन्दर इलम, चेन्नई की है । यह रामकृष्ण मठ, चेन्नई का ही एक उपकेन्द्र है । विवेकानन्दर इलम स्वामीजी की पवित्र स्मृतियों से जुड़ा एक आध्यात्मिक केन्द्र है । स्वामी विवेकानन्द जब १८९७ में चेन्नई आए थे, तब ९ दिन यहाँ रुके थे । तदनन्तर उनके गुरुभाई स्वामी रामकृष्णानन्द ने यहाँ रामकृष्ण मठ, चेन्नई का शुभारम्भ किया । १८९७ से १९०६ तक यहीं रहकर उन्होंने स्वामी विवेकानन्द के निर्देशानुसार सेवाकार्य किया । उसके बाद मठ भवन का स्थानान्तरण वर्तमान स्थित मयलापुर में हुआ । विवेकानन्दर इलम में स्वामी विवेकानन्द के जीवन व दर्शन पर आधारित एक स्थायी प्रदर्शनी है । इसके अलावा यहाँ शैक्षणिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते हैं ।

आवरण-पृष्ठ सज्जा – स्वामी अनुग्रहानन्द, रायपुर

जुलाई माह के जयन्ती और त्योहार

१८ जगन्नाथ रथयात्रा

३१ गुरुपूर्णिमा

सम्पादक महोदय से मुझे भी कुछ कहना है

श्रद्धेय महाराज जी,

पत्रिका के मुखपृष्ठ पर पहले की तरह बड़ा फोटो ही स्वामीजी का कृपया छापें। क्योंकि इनके सुन्दर चित्र को देखकर ही सब को आनन्द मिलता है और पत्रिका के पैसे उसी में वसूल हो जाते हैं। जो जनवरी माह में दुर्लभ फोटो छपा है, इस तरह के फोटो अन्दर के पृष्ठों पर छापकर पत्रिका को बहुत सुन्दर बना दिया है।

– **बद्रीश्वर पालीवाल, उदयपुर**

आदरणीय सम्पादक महोदय,

सादर प्रणाम,

पत्रिका का सम्पादकीय फरवरी, १५ बहुत ही अच्छा लगा, सम्पादकीय एक सीधी प्रेरणा का समकालिक परिस्थिति सम्बद्ध लेख होने के कारण संस्था व पत्रिका से हम पाठकों को सीधा जोड़ता है। **चन्द्रमोहन, टुण्डला**

आदरणीय स्वामीजी, सादर प्रणाम।

विवेक ज्योति के स्वरूप और सामग्री में सुधार के आपके प्रयत्न निश्चय ही प्रशंसनीय और स्वागत योग्य हैं। ...विगत १० अक्टूबर को श्यामलाताल के पू. स्वामी अव्ययात्मानन्द जी आये थे और वहाँ के आश्रम-परिसर का वर्णन और समस्याओं पर प्रभावकारी प्रकाश डाला था। यदि यह जानकारी विवेक-ज्योति में प्रकाशित हो सके, तो सबको बड़ा लाभ होगा। मुखपृष्ठ पर श्यामलाताल का सुन्दर चित्र छापा जा सकता है। आशा है आप इस सुझाव पर विचार करेंगे।

मुझे पता नहीं 'विवेक ज्योति' का कोई कारपस फंड है या नहीं, (जैसे प्रबुद्ध भारत का है)। फिर भी इस पत्र के साथ १०००/- रु. का चेक भेज रहा हूँ। आशा है, आप इसे स्वीकार कर राशि का उचित उपयोग करेंगे।

आपका – **एस. डब्लू. कनखोजे, बिलासपुर**

– सम्माननीय कनखोजे जी, आपका पत्र मिला। विवेक ज्योति में परिवर्तन का श्रेय उन सभी संन्यासियों और कर्मचारियों का है, जो लोग बड़ी लगन, निष्ठा और श्रम से कार्य करते हैं। साथ ही उन शुभेच्छु पाठकों का है, जो हमें समय-समय पर सही निर्देशन देते हैं। विवेक ज्योति का कोई स्थायी कोष नहीं है। भविष्य में बन सकता है। विवेक ज्योति के मर्म का बोध करने हेतु धन्यवाद !

– सम्पादक

वर्ष ५३ जुलाई २०१५ अंक ७

श्रीगुरुस्तोत्रम्

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।
चिद्रूपेण परिव्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।
चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरंजनम् ।
बिन्दुनादकलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।
ज्ञानशक्तिसमारूढस्तत्त्वमालाविभूषितः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदाता च तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।
अनेकजन्मसम्प्राप्तकर्मेन्धनविदाहिने ।
आत्मज्ञानाग्निदानेन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।
गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवतम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।
ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमल अचलं सर्वधीसाक्षिभूतं,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ।।

पुरखों की थाती

प्रत्यूहः सर्वसिद्धीनामुत्तापः प्रथमः किल ।
अति-शीतलमप्यम्भः किं भिनत्ति न भूभृतः ।।४५७

– उग्र स्वभाव सब सिद्धियों का प्रथम विघ्न है। जल अति शीतल होते हुए भी क्या पहाड़ों को फोड़ नहीं डालता!

प्रस्तावसदृशं वाक्यं सद्भावसदृशं प्रियम् ।
आत्मशक्तिसमं कोपं यो जानाति स पण्डितः ।।४५८।।

– जो प्रसंगोचित बातें, सद्भाव के अनुकूल प्रेम तथा अपनी शक्ति के अनुसार क्रोध करना जानता है, वही ज्ञानी है।

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते ।
जीर्यन्ति हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते ।।४५९।।

– इस जगत् में प्राय: ऐसा दीख पड़ता है कि धनवान लोगों में पाचन शक्ति नहीं होती, (दूसरी ओर) निर्धन लोग काठ तक खाकर पचा लेते हैं। (महाभारत)

प्रत्यक्षे गुरवः स्तुत्याः परोक्षे मित्र-बान्धवाः ।
कर्मान्ते दास-भृत्याश्च पुत्रा नैव तथा स्त्रियः ।।४६०।।

– गुरुजनों की स्तुति उनके सामने, मित्र-बन्धुओं की उनके पीछे, दास-सेवकों की प्रशंसा उनका कार्य पूरा होने पर और स्त्री-पुत्रों की कभी नहीं करनी चाहिये।

प्राज्ञस्तु जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः ।
गुणवद्-वाक्यमादत्ते हंसः क्षीरमिवाम्भसः।।४६१।।

– विवाद करनेवाले लोगों की भली-बुरी सारी बातें सुनकर भी, विवेकशील व्यक्ति उसमें से गुणयुक्त बातों को ग्रहण कर लेता है, वैसे ही जैसे कि राजहंस पानी में से केवल दूध को ग्रहण कर लेता है।

श्रीगुरुदेव के भजन

कृपा के बिना काम चलता नहीं है

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती, झाँसी

परिश्रम करे कोई कितना भी लेकिन
कृपा के बिना काम चलता नहीं है ।
निराशा-निशा नष्ट होती न तब तक
दया-भानु जब तक निकलता नहीं है ।।

दमित वासनायें अमित रूप ले जब
अन्तःकरण में उपद्रव मचातीं ।
तब फिर कृपासिन्धु श्रीरामजी के
अनुग्रह बिना मन सम्भलता नहीं है ।।

मृगवारि जैसे असत् इस जगत से
पुरुषार्थ के बल पर बचना है मुश्किल
श्रीहरि के सेवक जो छल छोड़ बनते
उन्हें फिर यह संसार छलता नहीं है ।।

सद्‌गुरु शुभाशीष पाने से पहले
जलता नहीं ज्ञान-दीपक भी घर में ।
बहती न तब तक समर्पण की सरिता
अहंकार जब तक कि गलता नहीं है ।।

राजेश्वरानन्द आनन्द अपना
पाकर ही लगता है जग-जाल सपना ।
तन बदले कितना भी पर प्रभु भजन बिन
कभी जन का जीवन बदलता नहीं है ।।

गुरुवर आया शरण तिहारी

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

गुरुवर आया शरण तिहारी ।
मार्ग कँटीले कुछ नहिं सूझै,
अरु चहुँ दिशि अँधियारी ।।
काम-क्रोध-मद-लोभ अग्नि ने
मम विवेक जलाया ।
मन-बुद्धि के विभ्रम ने
मुझे बहुत जनम भटकाया ।
अब तो आकर कृपा करके
लीजियो मोहि उबारी ।।
तमान्ध अविवेक मूढ़ता
मेरो पथ में संचारी ।
न चाहत भी संग न छोड़त
निशदिन करे रंगदारी ।।
मेरा कोई न शरण गुरुवर
एक ही आस तुम्हारी ।।
सुरेश रमेश गणेश सदा
गुरु परम ब्रह्म को ध्यावैं ।
गुरु कृपा कर परम कृपालु
परमेश्वर से मिलावें ।।
हे सद्‌गुरु परमेश्वर मैं
आयो तव द्वार भिखारी ।।

मोहि लागी लगन गुरु-चरनन की

मीराबाई

मोहि लागी लगन गुरु-चरनन की ।
चरन बिना मोहि कछु नहिं भावै,
जग-माया सब सपनन की ।।
भवसागर सब सूख गयो है,
फिकर नहीं मोहि तरनन की ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर,
उलट भई मोरे नयनन की ।।

सम्पादकीय

लोक-संस्कृति और वेद में कृषक की महिमा

भारत की सबसे बड़ी विरासत यहाँ की महान संस्कृति है, जो अपनी महानता से अनादि काल से सम्पूर्ण संसार के लोगों को शिक्षा प्रदान करती चली आ रही है। हमारी महान संस्कृति अपनी गरिमा का गायन स्वयं अपनी क्रिया-कलापों से करती है। यह गौरवशाली संस्कृति यहाँ के वासियों के जीवन में, उनकी प्रत्येक क्रिया में माला में सूत्रवत् अनुस्यूत है। यह लोक संस्कृति ही लोकप्रथा और लोकरीति के द्वारा सामान्य लोगों में धर्म की प्रेरणा देती है, उन्हें करुणा, सेवा, सौहार्दमय जीवन जीने को उत्प्रेरित करती है। लोकाचारों से लोकमर्यादा संरक्षित, पल्लवित एवं पुष्पित होती है। जन-साधारण में प्रचलित लोक के व्रत, त्योहार-पूजा आदि से सामाजिक समरसता और आध्यात्मिकता अक्षुण्ण है। आज भी विभिन्न स्थानों की लोककला, लोकनृत्य और लोकप्रथा एवं लोक जन-जीवन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लोक संस्कृति की धरोहर को संजीवित किये हुये है।

लोक में विभिन्न समय में अनेकों प्रकार से वृक्ष, वन, लता, सम्पूर्ण प्राणियों की पूजा की जाती है। देव-देवियों की अर्चना-वन्दना की जाती है। मनुष्य-जन्म को सबसे भाग्यशाली मानकर उसकी प्रशंसा की जाती है। गहन अरण्य में तप द्वारा ऋषि-मुनियों ने वेदों के सत्य का साक्षात्कार किया और हमारी आध्यात्मिक शिला को सुदृढ़ किया। लेकिन मानव मात्र, प्राणीमात्र की मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति का बीड़ा लोक-निवासी किसान ने उठाया, जिसे संस्कृत में कृषक कहते हैं। इसी कृषक ने हमें अपने श्रम-बिन्दु से अनाज, फल, फूल आदि उत्पन्न कर मानव-जीवन की रक्षा की और उन्हें उच्च चिन्तन के योग्य बनाया। कहते हैं कि 'भूखे भजन न होहिं गोपाला।' उस क्षुधा की ज्वाला को शान्त इस कृषक ने ही किया। इसी कृषक ने ही हमारे जीवन-धारण की सभी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराकर हमें इस उच्च शिखर पर पहुँचने के योग्य बनाया। इसलिये यह कृषक ही हमारा देवता है। यह कृषक ही हमारा जीवन्त साक्षात देव है। हम इसकी वन्दना करते हैं। इसीलिये जब गाँवों में पहली बार खेतों में हल चलाते हैं, तो जमींदार खेतिहर अपनी जमीन, हल, बैलों और हल चलानेवाले की हल्दी, अक्षत, चन्दन, पुष्प और नैवैद्य से पूजा करते हैं। किसान को सुस्वादु भोजन कराते हैं। इस प्रकार कृषक लोकपूज्य हो जाता है।

कृषक की महिमा का वर्णन अथर्ववेद (१२/१/४२) की ऋचाओं से निनादित होता है –

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पंच कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।

अर्थात् जिसमें चावल, गेहूँ, दाल आदि अन्न उत्पन्न होते हैं, जहाँ पाँच कृषक कार्य करते हैं और जहाँ मेघ एवं वर्षा से अन्न तथा औषधियाँ पैदा होती हैं, उस पृथ्वी माता को हम प्रणाम करते हैं। यहाँ शाश्वत वेद-भगवान ने कृषक की महिमा को स्पष्ट उजागर किया है।

कृषक का अर्थ भी बड़ा विलक्षण है। कृष् धातु में नक् प्रत्यय लगकर कृष्ण बनता है। कृष् का प्रयोग भगवान श्रीकृष्ण के नाम में है, जिसका एक अर्थ होता है आकर्षित करनेवाला, खींचनेवाला। श्रीकृष्ण आकर्षित करते हैं अपनी ओर। किसको? सबको आकर्षित करते हैं। कबसे? जबसे गर्भ में आये तबसे। बहुत कुछ छोड़ भी दें, तो अपने माता-पिता, ग्वाल-बाल, गोप-गोपियों, देव-देवियों और यहाँ तक कि राक्षसियों तक को उन्होंने अपनी ओर आकर्षित किया। सबको यथायोग्य गति प्रदान की। ब्रह्मा-विष्णु-महेश तक आकर्षित होकर इस धराधाम पर आ गये उनके दर्शनार्थ। सबसे बड़ी बात श्रीकृष्ण अपने भक्तों के मन को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और उनके साथ बाहर-भीतर दिव्य क्रीड़ा कर उन्हें दिव्य जीवन और परम शान्ति प्रदान करते हैं। भक्तों के जीवन को धन्य कर देते हैं।

उसी कृष् धातु में क्वन् प्रत्यय लगाकर कृषक शब्द बना है। तो प्रश्न उठता है कि कृषक क्या खींचता है, क्या कर्षण करता है? इसका सीधा सा उत्तर है, जिसे हर किसान, प्रत्येक ग्राम्य जीवन से जुड़ा व्यक्ति, सभी ग्रामीण लोग इसे जानते और सहज समझते हैं, वह है कृषक धरती माता से सारी सम्पदा कर्षण करता है। पृथ्वी से सारे अन्न उपजाने का कार्य करता है। एक दाने के बदले असंख्य दाने धरती से ग्रहण करने का कार्य तो कृषक ही करता है। पृथ्वी में छिपे अगाध रत्नों को अपने श्रम-सीकरों से ग्रहण करने का कार्य तो कृषक ही करता है। पृथ्वी में हीरे, मोती, सोने, चाँदी भी हैं, लेकिन उनसे मानव की भूख की निवृत्ति नहीं हो सकती है। कृषक मानव के मूलभूत आवश्यकताओं का कर्षण पृथ्वी से करता है और उसकी सुरक्षा करता है। वर्षा के लिये हवन कर बादलों से जल का आकर्षण करता

है। पेड़-पौधों को लगाकर पर्यावरण हेतु शुद्ध वायु का आकर्षण करता है। प्रकृति के सौन्दर्य और सुषमा से ओतप्रोत होकर उसके निर्माता परमात्मा की महिमा का स्मरण करता है। ऐसी है कृषक की ग्रहण-शक्ति, आकर्षण शक्ति।

आधुनिक विज्ञान ने अपनी तकनीकी की तुलना में भले ही उसके जीवनदाता किसान को बहुत अधिक महत्व नहीं दिया हो, लेकिन लोक ने इसे बड़ा महत्त्व दिया। एक लोकोक्ति है –

उत्तम खेती मध्यम बान।
अधम चाकरी भीख निदान।।

अर्थात् खेती, कृषि कार्य उत्तम है। वाणिज्य मध्यम है और दूसरे की नौकरी करना भीख माँगने के समान अधम है। बड़े-बड़े जमींदार, खेतिहरों के यहाँ बड़े अधिकारियों और व्यापारियों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उनसे सामञ्जस्य स्थापित करते देखा गया है। क्योंकि व्यापारी सोना-चाँदी, रुपये-पैसे तो नहीं खायेगा। व्यापारियों और अधिकारियों के जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुएँ ८०% किसानों के यहाँ मिलती हैं। इसलिये लोक संस्कृति ने किसानों की गरिमा का ठीक-ठीक ध्यान रखा। एक लोक संस्कृति के कवि ने आधुनिक वैज्ञानिकों पर व्यंग्य करते हुए यहाँ तक लिख डाला –

ऊ दिन कब आई।
जब हमार वैज्ञानिक लो चावल दाल बनाई।।
माई-बहिनी बाबूजी के करिहें सेवा बड़ाई।
भाई-भाई में सनेह परेम के दीयरा रोज जराई।।

आधुनिक विज्ञान की उन्नति ने निःसन्देह हमें विश्व में सम्मान दिलाकर गौरवशाली बनाया है, लेकिन मानव-मानव की संवेदना और दूरियाँ बढ़ी हैं। परस्पर प्रेम की भावना में ह्रास हुआ है। आधुनिक मानव दिन-प्रतिदिन स्वकेन्द्रित होते जा रहे हैं। लेकिन इसमें भी बहुत से ऐसे लोग हैं, जो दूसरों की सेवा कर रहे हैं एवं अनेकों संस्थायें हैं, जो परोपकारार्थ श्लाघनीय कार्य कर रही हैं। आज भी समाज में अच्छे लोग हैं, लेकिन जनसंख्या के अनुपात में पहले की अपेक्षा कम हैं।

लेकिन आप ग्रामीण अंचल में चले जाइये, तो वह स्वरूप आपको अभी भी दिखाई पड़ेगा। कुछ लोग कहेंगे कि आप कैसे ऐसा बोल रहे हैं? चूँकि मुझे २५ वर्षों तक पढ़ाई के साथ-साथ खेती करने-कराने दोनों का अनुभव है। ग्राम्य जीवन, ग्रामीण परिवेश और प्रकृति के सुरम्य वातवारण में पला-बढ़ा हूँ। किसानों के निश्छल हृदय, कठोर परिश्रम, सादगीपूर्ण जीवन और परस्पर सेवा-सद्भावना से गहराई से जुड़ा हुआ हूँ। इसलिये हमें लोकसंस्कृति के संवाहक कृषकों की जीवन-शैली ज्ञात है। वेद की ऋचायें उच्च स्वर में यह घोषणा करती हैं – **मातृदेवो भव पितृदेवो भव**। लेकिन लोक संस्कृति ने **कृषक देवो भव** की संज्ञा चरितार्थ कर दिखाया है। मैं आपको एक घटना बता रहा हूँ, जिससे आपको कृषक की उदारता और महानता का परिचय मिल जायेगा।

एक बार मैं कुछ सन्तों के साथ नैमिषारण्य से लखनऊ आ रहा था। जनवरी का महीना था। ठण्डी का मौसम था। सभी आनन्द मनाते हुए चले आ रहे थे। सन्त हमेशा हर परिस्थिति में आनन्द ही मनाते रहते हैं। तभी रास्ते में एक गन्ने का खेत दिखाई दिया, जिसमें एक किसान गन्ना काटकर जमा कर रहा था। गाड़ी तीव्र गति से चली जा रही थी। सन्तों की दृष्टि हरे ताजे, मोटे, गन्ने पर पड़ी। उसके बाद राजयोग में कथित संयम का बाँध टूट गया और गन्ना खाने की इच्छा हो गयी। किसी एक कर्मचारी को किसान से गन्ना खरीदकर लाने के लिये भेजा गया। क्योंकि अभी हम जिस परिवेश में रह रहे हैं, उसमें कोई वस्तु निःशुल्क मिलेगी, हम सोच नहीं सकते। भिक्षा की बात अलग है। उस कर्मचारी ने जाकर किसान को सारी बात बताई। आश्चर्य है हम तो केवल दो-चार ईंख खरीदने गये थे। लेकिन उस किसान ने तो, बहुत से गन्ने हमारी गाड़ी में लाद दिये। रूपये देने पर कहा कि नहीं, नहीं हमें रूपये नहीं चाहिये। आप हमारे खेत में आये हैं, यहाँ बिना पैसे के ही जितना चाहिये, ले लीजिये। किसान की उस देववृत्ति, देवमय व्यवहार ने हमें बहुत ही मुग्ध किया था। यह केवल एक घटना है। ऐसी बहुत सी घटनायें किसान के सहृदयता की हैं, जो मानवीय संवेदना को झंकृत करती हैं।

कृषक आधुनिक विज्ञानयुग में तकनीकि ढंग से कृषि करके विकास करें, लेकिन मानवीय संवेदना, सेवा, सहयोग रूपी अपनी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत को नष्ट न करें, साथ ही यह सम्पूर्ण जगत परमात्मा का है, इसलिये सर्वत्र उनका ही स्मरण करते ही ईशभाव से सबकी सदा सेवा करते रहें। ○○○

गुरु की आवश्यकता

स्वामी विवेकानन्द

प्रत्येक जीवात्मा का पूर्णत्व प्राप्त कर लेना बिल्कुल निश्चित है और अन्त में सभी इस पूर्णावस्था की प्राप्ति कर लेंगे। हम वर्तमान जीवन में जो कुछ हैं, वह हमारे पूर्व जीवन के कर्मों और विचारों का फल है, और हम जो कुछ भविष्य में होंगे, वह हमारे अभी के कर्मों और विचारों का फल होगा। पर, हम स्वयं ही अपना भाग्य निर्णय कर रहे हैं, इससे यह न समझ बैठना चाहिए कि हमें किसी बाहरी सहायता की आवश्यकता नहीं, बल्कि अधिकतर स्थलों में तो इस प्रकार की सहायता नितान्त आवश्यक होती है। जब ऐसी सहायता प्राप्त होती है, तो आत्मा की उच्चतर शक्तियाँ और संभावनाएँ उद्दीप्त हो जाती हैं, आध्यात्मिक जीवन जाग्रत हो जाता है, उसकी उन्नति वेगवती हो जाती है और अन्त में साधक पवित्र और सिद्ध हो जाता है।

यह संजीवनी-शक्ति पुस्तकों से नहीं मिल सकती। इस शक्ति की प्राप्ति तो एक आत्मा एक दूसरी आत्मा से ही कर सकती है, – अन्य किसी से नहीं। हम भले ही सारा जीवन पुस्तकों का अध्ययन करते रहें और बड़े बौद्धिक हो जायें, पर अन्त में हम देखेंगे कि हमारी तनिक भी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हुई है। यह बात सत्य नहीं कि उच्च स्तर के बौद्धिक विकास के साथ-साथ मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष की भी उतनी ही उन्नति होगी। पुस्तकों का अध्ययन करते समय हमें कभी-कभी यह भ्रम हो जाता है कि इससे हमें आध्यात्मिक सहायता मिल रही है; पर यदि हम ऐसे अध्ययन से अपने में होने वाले फल का विश्लेषण करें, तो देखेंगे कि उससे, अधिक से अधिक हमारी बुद्धि को ही कुछ लाभ होता है, हमारी अन्तरात्मा को नहीं। पुस्तकों का अध्ययन हमारे आध्यात्मिक विकास के लिये पर्याप्त नहीं है। यही कारण है कि यद्यपि लगभग हम सब आध्यात्मिक विषयों पर बड़ी पाण्डित्य-पूर्ण बातें कर सकते हैं, पर जब उन बातों को कार्यरूप में परिणत करने का, – यथार्थ आध्यात्मिक जीवन बिताने का अवसर आता है, तो हम अपने को सर्वथा अयोग्य पाते हैं। जीवात्मा की शक्ति को जाग्रत करने के लिए किसी दूसरी आत्मा से ही शक्ति का संचार होना चाहिए।

जिस व्यक्ति की आत्मा से दूसरी आत्मा में शक्ति का संचार होता है, वह गुरु कहलाता है और जिसकी आत्मा में यह शक्ति संचारित होती है, उसे शिष्य कहते हैं। किसी भी आत्मा में इस प्रकार शक्ति-संचार करने के लिए आवश्यक है कि पहले तो, जिस आत्मा से यह संचार होता हो, उसमें स्वयं इस संचार की शक्ति विद्यमान रहे, और दूसरे, जिस आत्मा में यह शक्ति संचारित की जाय, वह इसे ग्रहण करने योग्य हो। बीज सजीव हो एवं भूमि भी अच्छी जुती हुई हो, और जब ये दोनों बातें मिल जाती हैं, तो वहाँ वास्तविक धर्म का अपूर्व विकास होता है। 'यथार्थ धर्म-गुरु में अपूर्व योग्यता होनी चाहिए, और उसके शिष्य को भी कुशल होना चाहिए।'[१] जब दोनों ही अद्‌भुत और असाधारण होते हैं, तब अद्‌भुत आध्यात्मिक जागृति होती है, अन्यथा नहीं। ऐसे ही पुरुष वास्तव में सच्चे गुरु होते हैं, और ऐसे ही व्यक्ति सच्चे शिष्य या मुमुक्षु या आदर्श साधक कहे जाते हैं। अन्य सब लोग तो आध्यात्मिकता से खेल मात्र करते हैं। उनमें बस, थोड़ा सा कौतूहल भर उत्पन्न हो गया है, थोड़ी-सी बौद्धिक स्पृहा भर जग गयी है, पर वे अभी धर्म-क्षितिज की बाहरी सीमा पर ही खड़े हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इसका भी कुछ महत्त्व अवश्य है, क्योंकि हो सकता है, कुछ समय बाद यही भाव सच्ची धर्म-पिपासा में परिवर्तित हो जाय और यह भी प्रकृति का एक बड़ा अद्‌भुत नियम है कि ज्यों ही भूमि तैयार हो जाती है, त्यों ही बीज भी आ जाता है, और वह आता भी है। ज्यों ही आत्मा की धर्म-पिपासा प्रबल होती है, त्यों ही धर्मशक्ति-संचारक पुरुष को उस आत्मा की सहायता के लिए आना ही चाहिए, और वे आते भी हैं। जब ग्रहीता की आत्मा में धर्म के प्रकाश की आकर्षण-शक्ति पूर्ण और प्रबल हो जाती है, तो इस आकर्षण से आकृष्ट प्रकाशदायिनी शक्ति स्वयं ही आ जाती है। ○○

सन्दर्भ

१. अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः॥
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढाः अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥
मुण्डकोपनिषद ॥१।२।८॥

गुरुगतप्राण शशी

श्रीरामकृष्ण देव के सोलह अन्तरंग संन्यासी शिष्य अपने आप में महान थे। इन सबके अग्रणी स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरुदेव के वचनों का पालन करते हुए सनातन धर्म का प्रचार कर भारत की लुप्त अस्मिता को पुनर्जागृत किया। सभी संन्यासी शिष्य गुरुभक्ति का अनन्य उदारहण थे। गुरु यदि हमारे सम्मुख सदेह उपस्थित हैं, तो उनकी सेवा-शुश्रूषा हम कर सकते हैं। किन्तु उनकी महासमाधि के बाद भी यह सोचकर उनकी सेवा करना कि वे सूक्ष्म शरीर में हैं और सेवा ग्रहण कर रहे हैं, इसका यदि कोई ज्वलन्त उदाहरण थे, तो वे शशी महाराज थे। संन्यास के बाद इनका नाम स्वामी रामकृष्णानन्द हुआ। स्वामी विवेकानन्द की इच्छा थी कि वे स्वयं इस नाम को ग्रहण करें, परन्तु शशी की गुरुभक्ति और गुरुसेवा की बात को ध्यान में रखते हुए उन्हें यह नाम प्रदान किया।

शशी महाराज ने श्रीरामकृष्ण को ही अपने जीवन का सर्वस्व मान लिया था। श्रीरामकृष्ण की इच्छा और उनका आदेश पालन करना ही उनके लिए सर्वोपरि था और यह करने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता और वे इसे अक्लान्त भाव से करते। ग्रीष्मकाल में श्रीरामकृष्ण बरफ खाना पसन्द करते थे। इसलिए शशी गर्मी के एक दिन बरफ खरीदकर दो मील रास्ता पैदल चलकर दक्षिणेश्वर आए। बरफ को उन्होंने इतना प्रयत्नपूर्वक कपड़े में लपेटा कि इतना रास्ता तय करने के बाद भी बरफ गली नहीं। जब वे श्रीरामकृष्ण के पास पहुँचे तो प्रचण्ड धूप से उनका शरीर पसीने से लथपथ हो गया एवं मुँह बिल्कुल सूख गया था। श्रीरामकृष्ण ने उस अवस्था में दुख व्यक्त करते हुए कहा, 'अहा, तुम्हें बहुत कष्ट हुआ है।'

एकबार श्रीरामकृष्ण को शीतऋतु में जामरूल फल खाने की इच्छा हुई। उस मौसम में जामरूल नहीं आते थे। शशी महाराज को किसी तरह पता लगा कि अमुक बगीचे में जामरूल फल है। वे तुरन्त गए और इकट्ठा कर ले आए। श्रीरामकृष्ण ने विस्मयपूर्वक पूछा कि अरे, इस समय ये फल कहाँ से ले आए। श्रीगुरु की अभिलाषा पूर्ण करने को वे सदैव तत्पर रहते।

श्रीरामकृष्ण के अन्तिम दिनों में बीमारी के समय शशी महाराज ने उनकी प्राणपण से सेवा की थी। वे छाया की भाँति हर समय गुरु की शय्या के पास खड़े रहकर उनकी सेवा करते। गुरु की सेवा में खाना-सोना तक भूल जाते। एकदिन श्रीरामकृष्ण उनसे कहते हैं, 'स्नान-भोजन कर लो, मैं अभी अच्छा हूँ। मुझे अभी कुछ आवश्यकता नहीं हैं, भोजन कर लो।' इसी समय एक दिन श्रीरामकृष्ण ने शशी से कहा था, 'तू जिसे चाहता है – वह यही है, वह यही है, वह यही है। क्रमश: श्रीरामकृष्ण की शारीरिक अवस्था बिगड़ती गई और वह दिन आ गया, जब इस मर्त्यलोक को त्यागकर वे महासमाधि में लीन हो गए। सभी शिष्य मानों दुख के अथाह सागर में डूब गए हों।

इसके बाद श्रीरामकृष्ण के त्यागी शिष्यों ने संन्यास ग्रहण किया और वरानगर मठ में रहने लगे। शशी महाराज का नाम स्वामी रामकृष्णानन्द हुआ। श्रीरामकृष्ण के जीवित रहने के समय स्वामी रामकृष्णानन्द जिस प्रकार उनकी सेवा किया करते, ठीक उसी भाव से उनकी सेवा करने लगे। एक छोटे से पूजा-कक्ष में खाट के ऊपर ठाकुर का चित्र रहता था और खाट के सामने के भाग में ठाकुर की पादुका एवं अस्थि से भरा हुआ पात्र रखा था। वे नित्य ठाकुर की पूजा-आरती करते, उन्हें भोग लगाते। खाने-पीने का तो सर्वथा अभाव ही था। वे लोग भिक्षा के द्वारा जो कुछ मिलता, उसी को ठाकुर श्रीरामकृष्ण को भोग लगाकर ग्रहण करते। कभी चावल मिलता तो नमक नहीं जुटता, इस तरह दिन गुजारते।

प्रात: उठकर स्वामी रामकृष्णानन्द नीम या बबूल की डाल से एक दातून तैयार कर देते। जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण अपने जीवन काल में व्यवहार करते, ठीक उसी प्रकार दातून को कूच कर मुलायम कर दिया करते। एकबार ग्रीष्मकाल की रात में शशी सोये-सोये अपने शरीर पर पंखा झल रहे थे। अचानक उनके मन में हुआ कि श्रीगुरुमहाराज भी इस भीषण गरमी से कष्ट पा रहे होंगे। उसी क्षण वे पूजा-कक्ष में जाकर पलंग के सामने खड़े होकर सुबह तक श्रीठाकुर को हवा करने लगे।

श्रीठाकुर की सेवा के प्रति स्वामी रामकृष्णानन्द की इतनी निष्ठा थी कि वे किसी प्रकार का व्यतिक्रम सहन नहीं कर पाते थे। सेवा की त्रुटि से वे हृदय में विशेष कष्ट का अनुभव करते।

अपने प्रिय गुरुभाई स्वामी विवेकानन्द के अनुरोध पर वेदान्त प्रचार के लिए स्थायी रूप से रहने के लिए वे मद्रास आए। अन्य सेवाकार्यों के अलावा यहाँ भी वे नित्यक्रम से पूजा करते और उनका प्रात:काल लगभग पूजा में ही जाता। एकदिन मच्छरों के उपद्रव से उनकी नींद टूट गई। मच्छरदानी के भीतर से पंखा लेकर मच्छरों को भगाते-भगाते सहसा उन्हें लगा – श्रीगुरुदेव की मच्छरदानी के भीतर भी सम्भवत: मच्छर उन्हें कष्ट दे रहे हैं। वे तुरन्त पूजा-कक्ष में गए और मच्छरदानी के भीतर से मच्छरों को भगाया।

वे ठाकुर की प्रत्यक्ष सेवा में इतने विभोर रहते कि कहीं

(शेष भाग पृष्ठ ३३९ पर)

धर्म-जीवन का रहस्य (७/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

नारदजी को किसी ने भी बन्दर के रूप में नहीं देखा था। सबने तो नारदजी को नारदजी के ही रूप में देखा था। भगवान ने इतनी सावधानी बरती थी कि मेरे भक्त का कल्याण तो हो जाय, लेकिन लोग मेरे भक्त की हँसी न उड़ायें। इसीलिए लिखा हुआ है – सबने उनको नारदजी के रूप में ही देखकर प्रणाम किया था –

नारद जानि सबहिं सिरु नावा ।। १/१३२/८

किसी ने यह सोचा भी नहीं था कि ये विवाह करने आए हैं। सबने यही समझा कि ये तो सर्वत्र ही भ्रमण करते रहते हैं, यहाँ भी इस दृश्य को देखने के लिए आ गए होंगे। ये विवाह करने का संकल्प लेकर आए हुए हैं, यह तो कोई कल्पना ही नहीं कर सकता था। लिखा हुआ है कि भगवान ने उन्हें जो रूप दिया था, उसे केवल वे और उनकी माया जानती थी। भगवान ने ही तो उन्हें नियुक्त किया था। परन्तु हस्तक्षेप उन रुद्रगणों ने किया, जिन्हें नहीं करना चाहिए था। वे लोग शंकरजी के गण थे। उनकी दृष्टि बड़ी पैनी थी, परन्तु उन्होंने उस दृष्टि का दुरुपयोग किया। यह तो भगवान और उनके भक्त के बीच की बात थी, पर ये दो व्यक्ति ऐसे थे, जो उस पैनी दृष्टि का प्रयोग करके जान गये थे कि ये नारद हैं, विवाह की इच्छा से आए हैं, भगवान ने इन्हें बन्दर की आकृति दे दी है और इनको पता भी नहीं है। बाद में भगवान जब विवाह करके चले गये, तो दोनों ने हँसते हुए व्यंग्य के साथ कहा – आप जरा जाकर अपना मुँह शीशे में देखिए –

निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई ।। १/१३४/६

नारदजी को बड़ा क्रोध आया। उनको शाप दे दिया, पर इससे भी उनको सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने विचार किया और निष्कर्ष निकाला – अरे, मैं तो सर्वत्र प्रभु के गुणों का प्रचार करते घूमता रहता हूँ और इनको उपहास कराने के लिए क्या मैं ही एक मिला? मेरा ही अपमान करने को व्यग्र थे, तभी तो मुझे बन्दर बना दिया। लोग क्या सोचते होंगे, क्या समझते होंगे! लोगों की मेरे प्रति कितनी बुरी दृष्टि हो गई होगी! साथ ही उन्होंने एक और निर्णय लिया। – अब तो मैं दो में से एक ही कार्य करूँगा। या तो मैं उनको शाप दूँगा और यदि ऐसा नहीं हुआ, तो आत्महत्या कर लूँगा –

देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई ।
जगत मोरि उपहास कराई ।। १/१३६/३

वे क्रोधित होकर चल पड़े। प्रभु इतने कौतुकी कि नारद को वहाँ तक जाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ा। नारद के सामने बीच मार्ग में ही भगवान खड़े हैं। खड़े भी कैसे हैं? एक ओर लक्ष्मी और दूसरी ओर वही विश्वमोहिनी, जिससे नारद विवाह करना चाहते थे –

बीचहिं पंथ मिले दनुजारी ।
संग रमा सोई राजकुमारी ।। १/१३६/४

अब तो नारद के क्रोध की कोई सीमा नहीं रही। पहले तो मेरी हँसी उड़वाई और अब भी मुझे जलाने के लिए, दोनों पत्नियों को साथ लेकर आए हैं। इनके पास लक्ष्मी तो पहले से ही थीं, फिर इनको विवाह करने की क्या आवश्यकता थी, परन्तु मेरा विवाह रुकवाने के लिये इन्होंने उससे भी विवाह कर लिया। लेकिन इतने से भी इनको सन्तोष नहीं हुआ, तो ये मुझे जलाने के लिए ही उसको भी साथ लेकर आए हुए हैं।

बस, उनको तो इतना क्रोध आया कि पहले दृष्टि बदली और फिर सृष्टि बदल गई। जिन नारद को भगवान में गुण-ही-गुण दिखाई देते थे, उन्हीं को अब उनमें दोष-ही-दोष दिखाई देने लगे। उन्होंने भगवान से कहा – दूसरों की सुख-सम्पदा तुमसे देखी नहीं जाती, तुम्हारे मन में ईर्ष्या और कपट बहुत है। समुद्र मथते समय तुमने देवताओं को भेजकर शिवजी को विष पिलवाया और उन्हें बावला बना दिया –

पर संपदा सकहु नहिं देखी ।
तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी ।।

मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु ।
सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायहु ।। १/१३६/७-८

शरीर के रोगों की चिकित्सा सरल है, परन्तु मन के रोग की चिकित्सा बहुत कठिन है। इसका मूल कारण यह है कि शरीर का रोगी तो स्वयं को रोगी समझता है, परन्तु मन के रोगी दूसरों को ही रोगी समझते हैं। वे तो अपनी चिकित्सा नहीं, सदा दूसरे की चिकित्सा की ही बात सोचते हैं। कहते हैं – यह बुरा है, इसकी बुराई दूर होनी चाहिए। आज यही बात इस सीमा तक पहुँच गई और नारदजी को भगवान में ही ईर्ष्या-कपट दीखने लगे। भगवान से कह रहे थे – अपनी सुन्दरता दे दीजिए। यह क्या है? क्या यह स्वयं नारदजी का कपट नहीं है? जब दूसरे की सुन्दरता लेकर विवाह करते, तो क्या वह कपट नहीं था? वह तो कपट की पराकाष्ठा थी। ईर्ष्या तो नारद के मन में शंकरजी के प्रति उत्पन्न हुई है। परन्तु उन्हें अपने कपट-ईर्ष्या आदि दोष नहीं दीख रहे हैं। वे भगवान पर ही कपटी और ईर्ष्यालु होने का आरोप लगाते हैं।

यह बात पढ़कर तो बड़ी हँसी आती है कि उन्होंने यह भी कह दिया कि दूसरे की सम्पत्ति तुमसे देखी नहीं जाती। मानो विश्वमोहिनी उनकी अपनी सम्पत्ति थी। माया भगवान की, सम्पत्ति भगवान की, पर नारद ने मान लिया था कि इस पर तो मेरा ही अधिकार है। फिर कहते हैं – तुम नहीं चाहते थे कि मेरा विवाह हो।

क्रोध में नारद यह भी बोल गये – "तुमने सृष्टि के लिए जो कर्म-सिद्धान्त बना रखा है, वह क्या केवल दूसरों के लिए ही है? यदि दूसरों को उनके कर्मों का फल मिलना चाहिए, तो तुम्हें क्यों नहीं मिलना चाहिये?" क्रोध के कारण उनके मुँह से और भी प्रश्न आए। बोले – यह कैसी बात है? मैं जानता हूँ कि तुम परम स्वतन्त्र हो, संसार पर तुम्हारा शासन है, परन्तु तुम पर तो किसी का शासन है ही नहीं। कर्म-सिद्धान्त बेचारे सृष्टिवालों के लिए है, तुम्हारे लिए तो इसका कोई अर्थ ही नहीं है। परन्तु आज तुम्हारा मुझसे पाला पड़ा है, जो कर्म-सिद्धान्त तुम दूसरों पर लगाया करते हो, वही आज मैं तुम पर लगाऊँगा –

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई ।
भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई ।।
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा ।
अब लगि तुम्हहि न काहू साधा ।।
भले भवन अब बायन दीन्हा ।
पावहुगे फल आपन कीन्हा ।। १/१३७/१,४-५

अब वे भगवान को उनके कर्म का दण्ड देने को तैयार हुए। वे उनके एक-एक अपराध गिनाने लगे और उनके बदले में दिये जानेवाले दण्डों का निर्धारण करने लगे – जो मनुष्य शरीर बना करके तुमने मुझे ठगा है, मैं शाप देता हूँ कि तुम्हें भी वही मनुष्य शरीर धारण करना पड़े। तुमने मुझे विवाह न करने देकर दुखी किया है, मेरा अपकार किया है, तो मैं शाप देता हूँ कि तुम्हें भी पत्नी के विरह में बहुत दुःख सहना पड़े –

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा ।
सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा ।। ...
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी ।
नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी ।। १/१३७/६, ८

इसके साथ ही वे बोले – तुमने मुझे बन्दर की आकृति दी, तो मैं शाप देता हूँ कि तुम्हें भी बन्दरों से ही सहायता माँगनी पड़ेगी।

अब यहीं से बड़ी मीठी भाषा प्रारम्भ हो गई। शाप सुनकर व्यक्ति दुखी होता है। इतने शाप मिलने पर तो व्यक्ति का दुखी होना स्वाभाविक है, लेकिन भगवान ने मानो नारद को उत्तर देना प्रारम्भ किया। नारद ने जब उनकी ओर देखा, तो वे बड़े प्रसन्न लगे। शाप से तो व्यक्ति घबराता है, परन्तु भगवान ने हाथ फैलाया और ऐसा लगा कि जैसे किसी वस्तु को सिर पर धारण कर रहे हों। बहुत प्रसन्न हुए। बोले – भाई, तुमने दुखी करने के लिए ही तो मुझे शाप दिया है, तो लो, मैं इसे प्रसन्नता के साथ सिर पर धारण करता हूँ। इतना ही नहीं, भगवान ने नारद की स्तुति भी की –

श्राप सीस धरि हरषि हियँ
प्रभु बहु बिनती कीन्हि ।। १/१३७

प्रभु प्रसन्न हुए, तो नारद को और बुरा लगा। कहाँ तो मैं इन्हें शाप दे रहा हूँ और ये तो ऐसे प्रसन्न हो रहे हैं जैसे मैं इनको कोई बहुत बड़ा पुरस्कार या सम्मान दे रहा हूँ। इतने प्रसन्न तो कभी मेरी स्तुति-वाक्य को सुन कर भी दिखाई नहीं पड़े, जितने आज दिखाई दे रहे हैं।

भगवान बोले – महाराज, आप सन्त हैं, बड़े कृपालु हैं। नारदजी चिढ़कर बोले – मुझ पर व्यंग्य कर रहे हो या मेरी प्रशंसा कर रहे हो? प्रभु बोले – नहीं महाराज, मुझे तो इसमें हर तरह से प्रसन्नता-ही-प्रसन्नता दीख रही है। – क्या? बोले – संसारवाले दूसरों पर रुष्ट हुआ करते हैं,

लेकिन कितनी अच्छी बात है कि तुम्हें क्रोध भी आया, तो मेरे ऊपर आया। जो अपना होता है, उसी पर तो क्रोध आता है। मेरे और अपने नाते के सम्बन्ध से ही तुमने मेरे ऊपर क्रोध किया। यह तो बहुत ही अच्छा हुआ। इस पर मैं यही कहूँगा कि तुम धन्य हो। सचमुच तुम कितने महान सन्त हो। मुझे तुम्हारे शाप में भी कल्याण-ही-कल्याण दिखाई देता है। – कैसे? बोले – तुम एक-एक शाप पर विचार करके देखो कि तुमने कितने अच्छे शाप दिये हैं, मेरा भी कल्याण किया और संसार का भी कल्याण किया।

सूत्र बड़ा अनोखा है – भक्त ने क्रोध में भी मानो भगवान को नीचे उतरने के लिए बाध्य किया। भगवान को मानो चुनौती दी – "आप विकारों से शून्य होकर बड़े आनन्दित हो रहे हैं, जरा आप भी मृत्युलोक में आइए, तब पता चलेगा। उस सृष्टि में प्रविष्ट तो होइये, इसमें प्रविष्ट होकर जरा स्वयं दिखाइए कि आप क्या कर सकते हैं।" जब नारदजी ने कहा कि 'आपने मुझे ठगने के लिए जो आकृति बनाई थी, उसी मनुष्य के रूप में आपको जन्म लेना पड़ेगा।' तो भगवान हँसकर बोले, "भाई, शाप में तो व्यक्ति को ऐसा काम दिया जाना चाहिये, जिसे न वह करना चाहता हो और न कर सकता हो। किन्तु तुम तो जानते ही हो कि वेश बनाने की कला में मैं बड़ा निपुण हूँ और तुमने मुझे वही काम दे दिया, तो क्या यह शाप हुआ? तुमने तो मेरी इच्छा के अनुकूल कार्य ही मुझे सौंपा है। जब तुमने कहा कि मुझे बन्दरों की सहायता लेनी होगी, तो तुम यदि सन्त न होते, तो कहते, 'तुमने मुझे बन्दर की आकृति दी थी, तो बन्दर तुम्हें आजीवन कष्ट देते रहेंगे', तब तो वह शाप होता। मैंने तुम्हें बन्दर बनाकर दुख दिया और तुम कहते हो कि बन्दर तुम्हारी जीवन भर सहायता करेंगे। तुम कितने कोमल हृदय के हो! तुम चाहकर भी किसी का बुरा नहीं कर सकते।" फिर वे बोले, "नारद, तुम कितने भोले हो! मैंने तुम्हारा विवाह नहीं होने दिया, तो तुम्हें शाप देना चाहिए, 'तुम मनुष्य के रूप में जन्म लोगे, तो तुम्हारा भी विवाह नहीं होगा', परन्तु तुमने कहा कि मुझे पत्नी के वियोग में दुखी होना पड़ेगा। तो मेरा विवाह होगा, तभी तो वियोग होगा। इस प्रकार कम-से-कम मेरा विवाह होने का वरदान तो तुमने दे ही दिया। भाई, तुम कितने उदार हो?"

यहाँ संकेत यह है कि भक्त जब प्रेम से प्रार्थना करता है, तब तो भगवान उसे स्वीकार करते ही हैं, परन्तु जब उसके मन में भगवान के प्रति तीव्र क्रोध का उदय होता है, तो भक्त का वह क्रोध भी भगवान को इतना प्रिय है कि वे उसे उतना ही महत्त्व देते हैं। नारदजी ने अपने भक्ति-सूत्रों में एक वाक्य कहा है, जो उनके अनुभव से ही जुड़ा हुआ था। प्रश्न उठा – "महाराज, क्या भक्त के जीवन में कभी कोई विकार नहीं आता? जब वह संसार में रहेगा, व्यक्ति होगा, तो विकार तो उसमें भी आ सकते हैं। तो फिर एक संसारी और भक्त में अन्तर क्या होगा?" तब देवर्षि नारदजी ने अपने भक्ति-सूत्रों में जो वाक्य लिखा है, वह इस प्रकार है –

तदर्पित-अखिल-आचारः सन् काम-क्रोध-
अभिमान-आदिकं तस्मिन् एव करणीयम् ।।६५।।

नारदजी कहते हैं – जब भक्त ने स्वयं को पूरी तरह से भगवान में अर्पित कर दिया है, तो वह अपने काम, क्रोध, लोभ, अभिमान को भी उन्हीं से जोड़ देता है। वे यह नहीं कहते कि इनसे मुक्त होता है, बल्कि वह इन्हें भगवान से जोड़ देता है। इस प्रसंग में भगवान के प्रति नारद का जो आक्रोश है, उसके पीछे भी भक्त के मन का तीव्र प्रेम या अनुराग ही निहित है। यह प्रेम प्रभु को इतना प्रिय है कि वे इससे बड़े प्रभावित हो जाते हैं और स्वीकार कर लेते हैं कि तुमने मुझे जो शाप दिया, वह लोकहित की दृष्टि से परम कल्याणकारी है।

उत्तरकाण्ड में हनुमानजी ने सन्त का लक्षण बताया है। जब उन्हें लगा कि विभीषण सन्त हैं, तो उन्होंने सोचा कि मैं लंका में होकर भी इनसे हठपूर्वक परिचय प्राप्त करूँगा। – क्यों? बोले – साधु की कसौटी ही यह है कि जो किसी को हानि न पहुँचा सके –

साधु ते होइ न कारज हानी ।। ५/६/४

वही सच्चा साधु है। वह क्रोध के समय भी वाणी के द्वारा चाहे जो भी कहे, परन्तु वह जो भी करेगा, उससे सामनेवाले का कल्याण होगा, अमंगल कभी भी नहीं होगा। वह किसी का अकल्याण कर ही नहीं सकता। संसारी वह है, जो चाहते हुए भी आपका हित न कर सके और सन्त वह है, जो चाहकर भी आपका बुरा न कर सके। संसारी व्यक्ति जानता ही नहीं कि दूसरे का हित कैसे किया जाता है। वह हित करने जाता है, तो भी अहित कर बैठता है। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (३ ३)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराज जी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और स्वामी अनुग्रहानन्द ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

सेवक – हम लोग स्कूल और कार्यालय का जो कार्य कर रहे हैं, क्या इससे कर्मक्षय हो रहा है?

प्रेमेश महाराज – अवश्य ही। प्रत्येक क्षण तुम्हारा कर्म-क्षय हो रहा है। चींटी के जन्म में किए हुए कर्मों से तुम्हारा कर्मक्षय हुआ है। किन्तु पुन: जो कर्म कर रहे हो, वह भी तुम्हारा कर्मफल है। वह भी उसमें संयुक्त हो रहा है और तुम्हारे साथ-साथ जाएगा। तुम इस जन्म में जो कुछ कर रहे हो, वह भी उसी कर्मफल से कर रहे हो। किन्तु यदि इससे मुक्ति पाना है, तो निर्वासना होना होगा।

सेवक – कर्म का तम और रज चला जाय और सत्त्वगुण आने से मैं बच सकता हूँ? ।

महाराज – नहीं, उससे भी नहीं बच सकते ।

सेवक – तो क्या निर्वासना और निष्काम होना होगा?

महाराज – सभी कर्म ईश्वरोन्मुखी नहीं होने से तुम्हें कोई भी कर्म मुक्ति नहीं देगा। मन में दृढ़-संकल्प है, तो देह-मन-बुद्धि के पार जाना होगा ।

सेवक – कहाँ, समझ में तो नहीं आता?

महाराज – संकल्प है न?

सेवक – हाँ, वह तो है।

महाराज – उसी से होगा। अभी देखना कि क्यों मन में दृढ़-संकल्प नहीं आता है और किस-किस में मन अटक जाता है, तुम उन सबका विचार कर त्याग करने का प्रयत्न करो।

सेवक – महाराज, मेरे मन में एक द्वन्द्व चल रहा है। श्रीमाँ ने कहा है, 'जैसे शरत (स्वामी सारदानन्द) मेरा लड़का है, वैसे ही अमजद भी मेरी सन्तान है। किन्तु दोनों के व्यवहार तो एक जैसे नहीं देखता हूँ। इसका क्या कारण है?

महाराज – जो आग के जितने समीप रहेगा, उसे उतनी ही अधिक गरमी मिलेगी। शरत महाराज ने श्रीमाँ को जितना पहचाना था, क्या अमजद के लिये उतना जानना सम्भव हुआ था? श्रीमाँ की समदृष्टि थी।

१९-७-१९६०

प्रश्न – मैं समाज में चारों ओर एक हल्कापन देख रहा हूँ, इसे रोकने का क्या उपाय है?

महाराज - हमारे बच्चों को सैन्य अनुशासन (Military discipline) की आवश्यकता है। लड़के सात-वर्ष की उम्र में आयेंगे, एन.सी.सी (N.C.C.) की तरह रहेंगे, उपासना, ध्यान, जप, पाठ और पूरा दिन कठोर नियमों का पालन करते हुए रहेंगे। इस प्रकार दस वर्षों तक रहते-रहते उन लोगों में चरित्र-बल, बुद्धि और राष्ट्रबोध जाग्रत होगा। तब जो लड़के यहाँ से निकलेंगे, वे योग्य नागरिक, सद्गृहस्थ एवं सुयोग्य संन्यासी होंगे। किन्तु छात्रावास से जो लड़के दो-महीने की छुट्टी में घर जाते हैं, उसमें सब कुछ नष्ट हो जाता है। वहाँ जाकर फिर से सात बजे उठना, कभी भी खाना और ध्यान-भजन तो है ही नहीं, उसी में सब मिट्टी में मिल जाता है। यदि लगातार कम-से-कम तीन वर्ष तक रखा जाय, तब थोड़ा-सा हो सकता है।

व्यायाम की अपेक्षा परिश्रमजनित कार्य की ओर झुकाव अच्छा है। व्यायाम को विधिवत करने से सभी अंग-प्रत्यंगों का संचालन होता है। किन्तु परिश्रमजनित कार्य से बच्चा बुद्धि और कार्यकुशलता इत्यादि में पारदर्शिता अर्जित करता है।

अभी चारों ओर छात्रावास खोलने के लिये होड़ लगी हुई है। भीतर अवचेतन मन में व्यावसायिक बुद्धि है। कुत्ते की पूँछ के समान अनुकरण कर रहे हैं। ये लोग जानते ही नहीं भारत क्या है, इसकी संस्कृति क्या है, श्री रामकृष्ण क्या हैं और उन्होंने क्यों अवतार लिया? ये सब नहीं जानते हैं तथा कोई जानना भी नहीं चाहता है। इन लोगों के छात्रावास खोलने से लड़कों की क्या दशा होगी? किन्तु, अभी देश में ऐसे ही चलेगा, बाद में और भी विकसित, सुशिक्षित लोग आयेंगे। वे लोग देश को जगायेंगे। ठाकुरजी आये हैं, उनका आना तो व्यर्थ नहीं हो सकता है।

सेवक – क्या मोहम्मद अवतार हैं या ईश्वर की शक्ति हैं?

महाराज – ईश्वर ने श्रीरामकृष्ण देव के शरीर का निर्माण

कर उसमें से मुक्ति-धाम का आदर्श संसार को दिखा दिया है। उसी प्रकार वे मोहम्मद के शरीर में भी आये थे। मोहम्मद के शरीर में उस समय के अनुसार शक्ति की आवश्यकता थी। तत्कालीन आसपास की परिस्थितियों को लगभग सुन्दर रूप देना पड़ा था। मोहम्मद के विषय में जानने के लिये आसपास की परिस्थितियों की पृष्ठभूमि जानना आवश्यक है। इतिहास नहीं जानने से या सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि नहीं जानने से धर्म को नहीं समझा जा सकता है। मुसलमानों ने १४०० वर्षों से अभी तक अपने धर्म को बचा कर रखा है। हम लोगों का धर्म केवल बुआ की, लक्ष्मी की हाँड़ी (अन्नपात्र) में है। हिन्दुओं में उदारता के नाम पर निष्ठा की कमी है। इसलिये हमें लोगों को थोड़ी निष्ठा सिखाने की आवश्यकता है। हमारा धर्म, हमारी संस्कृति, हमारी विरासत, पूजा, जप, ध्यान आचार-नियम और सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक नीति के सम्बन्ध में लोगों को जागरुक करने की आवश्यकता है।

२०-७-१९६०

प्रश्न – जिन्हें दृढ़ता से दीक्षा दी जा रही है, मन्दिर में भजन गवाया जा रहा है, क्या उससे उन लोगों का विकास होगा? कहा जाता है कि छज्जे पर बीज रहने से एक-न-एक दिन पौधा निकलेगा ही।

महाराज – क्यों ईसा मसीह ने नहीं कहा कि बीज पत्थर पर गिरा, उसका विकास नहीं हुआ? हमारा धर्म तो वैसा धर्म नहीं है कि बलपूर्वक करना होगा। इसके अलावा बीज गिरने से भी, धर्म-संस्कार देने पर भी वह लिया कि नहीं, देखना होगा। नहीं स्वीकार करने से कुछ भी नहीं होगा। क्या, पाने से ही सभी लोग लेते हैं? इसके अतिरिक्त शायद बीज गिरा, किन्तु कितने जन्मों के बाद उस बीज से अंकुर निकलेगा, इसे कौन जानता है। पहले जो स्वेच्छा से मन्दिर में जाकर प्रणाम करता था, ऐसा हुआ कि बल-पूर्वक दीक्षा दिलाने पर, वह प्रणाम नहीं करता है! जो थोड़ा विकास हो रहा था, प्रतिक्रिया कर वह अधिक पीछे हो गया। सनातन धर्म में कोई जबरदस्ती नहीं है। ''ससुखं कर्तुमव्ययम्''। अर्थात् इस धर्म-पालन से बहुत सुख मिलता है।

वैष्णव धर्म के सम्बन्ध में चर्चा हो रही है। किसी ने नित्यानन्दजी के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ कहा।

महाराज – सचमुच, नित्यानन्दजी का एक चरित्र था। उन्होंने हिन्दू धर्म को बचा दिया है। तब इस्लाम धर्म का अर्थ केवल अल्लाह कहना था। ऐसा सहज-सरल धर्म ब्राह्मणों के अत्याचारों के विरुद्ध सबको आकर्षित करता था। नित्यानन्दजी ने उसके विपरीत प्रचार किया – केवल 'हरि' कहने से ही होगा, भक्त होने से ही होगा, कोई जाति-भेद नहीं है। कैसा विलक्षण चरित्र था! बाल्यावस्था से ही अवधूत-त्यागी, किन्तु बाद में गृहस्थ बने। वैसा नहीं करने से चैतन्यदेवजी का कार्य नहीं होता। उन्होंने जन-साधारण की भावुकता का सदुपयोग किया। गाँवों के लोग जो 'हरि-हरि' कहते हैं और व्यवहार में इतने विनम्र तथा सदाचारी हैं, ये सब नित्यानन्दजी की कृपा से हुआ है।

प्रश्न – ठाकुरजी की विभिन्न साधनाओं का विवरण जैसा मिलता है, वैसा चैतन्यलीला में नहीं देखता हूँ।

महाराज – अरे तुम क्या कह रहे हो! चैतन्यदेव जी का क्या भाव है! – कभी यशोदा बन रहे हैं, कभी सिंहासन पर बैठ रहे हैं, जब नृसिंह हो रहे हैं, तब उनकी माँ तक उन्हें प्रणाम कर रही हैं। किन्तु अन्तरंगों के साथ थे। ठाकुरजी ने तो अपनी बातें अन्तरंगों से ही कही हैं। इस बार तो लिखकर रखा भी गया है। श्रीरामकृष्ण और श्रीकृष्ण की समन्वय-सत्ता एक जैसी है। श्रीकृष्ण के युग में पृथ्वी कहने से जो समझा जाता था, उसमें सर्वधर्म-समन्वय हुआ था। इसबार विश्वव्यापी धर्म है, इसलिये ठाकुरजी को विभिन्न धर्मों का समन्वय दिखाना पड़ा था।

स्वामीजी जैसे व्यक्ति में क्या अवलोकन शक्ति थी! उन्हें सम्पूर्ण विश्वकोष याद हो गया था। अब तक ऐसा कोई व्यक्ति आविर्भूत नहीं हुआ।

किसी के द्वारा धर्म के बाह्य आचरण के सम्बन्ध में कटाक्ष करने पर –

महाराज – वैज्ञानिक अन्वेषण कर जो आविष्कार करते हैं, उसे वे संसार को देते हैं और लोग उसका उपयोग करते हैं। उसी प्रकार वेदान्त अनुसन्धान करके साधक और अवतार जो अविष्कार करते हैं, उसे तीर्थ, पाठ, पूजा और विभिन्न प्रकार की उपासना के द्वारा लोकोपयोगी बनाकर उसी तथ्य को अभिव्यक्त और प्रचार-प्रसार करते हैं।

तुम लोगों का जो स्वास्थ्य है, नियमानुसार चलने से अनुभूति न होने पर भी परोक्ष-ज्ञान होने में कोई बाधा नहीं है। तब भले ही अधिक कुछ न हो, लेकिन इस शरीर-मन-बुद्धि का दुख बहुत हो कम हो जायेगा। **(क्रमशः)**

विषय-बुद्धि का त्याग किए बिना चैतन्य ही नहीं होता – भगवान लाभ नहीं होता। विषय-बुद्धि के रहने से ही कपटता आती है। सरल हुए बिना उन्हें प्राप्त नहीं किया जा सकता। – श्रीरामकृष्ण परमहंस

साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद (७)

स्वामी आत्मानन्द

(स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनके द्वारा कलकत्ता में प्रदत्त इस प्रेरक व्याख्यान को स्वामी प्रपत्त्यानन्द द्वारा सम्पादित कर विवेक ज्योति के पाठकों हेतु प्रकाशित किया जा रहा है।)

एकाग्र करने का क्या तात्पर्य है? इस जगत से अपने मन को हटाकर मैं चित्रकारी में लगाता हूँ, तब बहुत सुन्दर चित्र अंकित होता है। आप देखेंगे, जो व्यक्ति जिस विद्या में निपुण है, जिसमें उसकी रुचि है, उसमें उसका मन एकाग्र हो जाता है। किन्तु यह जो ध्यान की एकाग्रता है, जिसके सहारे आत्मतत्त्व का बोध होता है, उस एकाग्रता का लक्षण अलग है। वह अलग लक्षण क्या है? एक है किसी बाहरी विषय में, जिसमें मेरी रुचि है, उसमें मन का एकाग्र होना और दूसरा है मन का अपने ऊपर एकाग्र होना। अध्यात्म की जो एकाग्रता है, वहाँ मन को संसार से हटाकर अपने ऊपर एकाग्र किया जाता है। तब मन अपनी परतों को काटने लगता है, छेदने लगता है, अपनी गहराई में उतरता है। यह कैसे? जैसे एक उदाहरण मैंने दिया था, सामान्य प्रकाश की किरण में कोई भेदन शक्ति नहीं है। यह कपड़े को भेद नहीं पाती। यदि इसकी आवृत्ति (frequency) बढ़ा दें या wave length कम कर दें, तो कपड़े को क्या चमड़ी को भी भेद देती है, यह एक्स-रे हो जाती है, Deep x-ray therapy के पीछे यही सिद्धान्त है। हम सामान्य आलोक किरण की frequency या wave length कम कर देते हैं और उसमें भेदन शक्ति (penetrating power) बहुत बढ़ जाती है। जैसे सामान्य हवा है। इसमें कोई शक्ति मालूम नहीं पड़ती। लेकिन इसी हवा को compress कर दें, तो कठोर-से-कठोर ग्रेनाइड चट्टानें कट जाती हैं। हम air compressor से चट्टानों को छेद देते हैं, इसका क्या अर्थ है? हवा में शक्ति बाहर से नहीं आई। वह शक्ति उसके भीतर ही थी और जब हम उसे दबाते हैं, तो वह शक्ति प्रकट होकर कठोर चट्टानों को काट देती है। ठीक इसी प्रकार हमारे मन में अनन्त शक्ति है, पर उस शक्ति का पता हमें इसलिये नहीं चलता, क्योंकि वह बिखरी हुई है। जब हम बिखरे हुए मन को समेटकर कहीं एकाग्र करते हैं, तो हमें उस विषय का ज्ञान होने लगता है।

हमारे भीतर क्या है, यदि इसे जानने की इच्छा है, तो हम अपने मन को भीतर की ओर मोड़ें, उसे अन्तर्मुखी करें, तब हमें इसका बोध होने लगता है। वह तत्त्व क्या है? चौथे श्लोक में जो बात पहले कही गयी थी –

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युत्पद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।१/१/४

– अर्थात् जो वाणी के द्वारा प्रकट नहीं होता, परन्तु जिसके द्वारा वाणी प्रकट होती है। जो वाणी के द्वारा प्रकट नहीं होता, इसका अर्थ है कि वाणी बोलकर बता नहीं सकती है कि यह चैतन्य क्या है, यह आत्मतत्त्व क्या है? वत्स ! तुम जिसके सम्बन्ध में पूछ रहे हो, वह वाणी का विषय नहीं है, तो तुम्हें कैसे बताऊँ? पर वह वाणी को प्रकाशित करता है, उसके कारण वाणी बोलने में समर्थ होती है। इसलिए उस ब्रह्म को जानो।

नेदं यदिदमुपासते – तुम जो उपासना करते हो, वह ब्रह्म नहीं है, इसका क्या अर्थ है? इसका यहाँ अर्थ है कि मनुष्य की वाणी, मनुष्य का मन ब्रह्म का सबसे अच्छा प्रतीक है। यदि ब्रह्म का प्रतीक किसी को मानना हो, तो ब्रह्म के प्रतीक के रूप में अपनी वाणी, अपनी आँखों को ही क्यों नहीं ग्रहण करते? अपने कान को ही क्यों नहीं मानते? यहाँ पर गुरु शिष्य को समझा रहे हैं। आचार्य शंकर भाष्य करते हुए लिखते हैं – हम भिन्न-भिन्न देवताओं की क्या मानकर पूजा करते हैं? ये साक्षात् परब्रह्म हैं, ऐसा मानकर हम पूजा करते हैं। हम अपने से बाहर किसी देवता की ब्रह्म मानकर पूजा करते हैं, इसका तात्पर्य यही तो हुआ कि हमने उस बाहर रखे हुए देवता को ब्रह्म का प्रतीक माना। तो आचार्य शंकर कह रहे हैं कि ऋषि यहाँ पर कहते हैं, ब्रह्म का सबसे सुन्दर प्रतीक हमारी वाणी, हमारा कान, हमारे नेत्र हैं।

हम इस संसार में देवता की उपासना ब्रह्म मानकर करते हैं, यह ठीक है, किन्तु यह गौण प्रतीक है। तो मुख्य प्रतीक क्या है?

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।१/१/५

जो मन के द्वारा मनन में नहीं आता है, परन्तु जो मन को मनन करने की शक्ति प्रदान करता है, वही ब्रह्म है। इसका तात्पर्य यह है कि हम मन का मनन करना, जो देख रहे हैं उसके पीछे की शक्ति के सम्बन्ध में सोचें, वही ब्रह्म है। मानो ब्रह्म हमसे बाहर नहीं है। वह चैतन्य हमसे बाहर कहीं पर स्थित नहीं है, वह हममें ही है। ये हमारी आँखें, हमारा मन उस चैतन्य का, उस आत्मतत्त्व का सबसे अच्छा प्रतीक है। इस प्रकार हमें उस आत्मतत्त्व की ओर ले जाने की चेष्टा की गयी है। ऐसा अद्भुत यहाँ वर्णन है।

श्रीरामकृष्ण एक उदाहरण के द्वारा समझाते थे। एक छोटा-सा बच्चा है। कड़ाही में जल है और उसमें परवल और आलू नाच रहे हैं। लड़का कहता है, माँ देखो ! परवल और आलू नाच रहे हैं। लड़के की दृष्टि से बिल्कुल सही है, क्योंकि पानी के खौलने के कारण आलू-परवल नाचते से दिखाई देते हैं। माँ आकर नीचे जो आग जल रही है, उस लकड़ी को सरका देती है। तब आलू-परवल का नाचना बन्द हो गया। ये जो आलू और परवल नाच रहे थे, क्यों नाच रहे थे? ये अग्नि के कारण नाच रहे थे। ऐसे ही उस चैतन्य के कारण ही हमारा मन नाचता है, आँखें नाचती हैं, सभी काम करते हैं।

इस प्रकार प्राण, कान, आँख, मन और वाणी माध्यम से उस तत्त्व को देखने के लिए हमको कहा गया। हमें कहा गया कि भीतर देखो कि ये सभी इन्द्रियाँ कैसे काम करती हैं। तब इसके माध्यम से तुम जान पाओगे कि भीतर ऐसा कोई तत्त्व है जिसकी इच्छा और प्रेरणा से ये इन्द्रियाँ काम करती हैं। ऐसा समझा दिया कि कार्य करने की प्रेरक शक्ति हमारे भीतर स्थित है, जो दिखाई नहीं देती, किन्तु है।

अब शिष्य ने चिन्तन करना शुरू किया। शिष्य मन में विचार कर रहा है। ठीक है ! गुरुजी ने आत्मतत्त्व का उपदेश दिया है। उन्होंने यह भी कहा कि यह तत्त्व इन्द्रियों का विषय नहीं है। यहाँ तक कहा कि वह तो बड़ा गूढ़ है, इसे हम तुम्हें कैसे समझाएँ !

हमारे शास्त्रों में किसी वस्तु को समझाने के लिए एक परम्परा रची गयी है। वह परम्परा क्या है? जाति, गुण और क्रिया की परम्परा है। हम किसी वस्तु को कैसे समझाते हैं? किसी वस्तु को समझाने के तीन गुण हैं। हम कहते हैं – वह वस्तु अमुक जाति की है, उसके ये गुण हैं और वह वस्तु अमुक क्रिया करती है। इसे और स्पष्ट रूप से समझें। जैसे किसी मनुष्य के बारे में समझाना है, तो कहेंगे यह एक व्यक्ति है। पहले वर्गीकरण किया गया कि यह मनुष्य-जाति का है। यह अन्य पशु आदि जातियों से भिन्न है। अब मनुष्य जाति में तो असंख्य मनुष्य हैं। तो इस व्यक्ति को कैसे समझाएँ? तो उसके गुणों को बताया गया कि असंख्य मनुष्यों में इस मनुष्य के ये गुण हैं। इसकी यह विशेषता है। इस मनुष्य में जो गुण हैं, वे किसी दूसरे मनुष्य में भी हो सकते हैं। तब कैसे समझाएँ? उसका चेहरा-मोहरा ऐसा है। उसके शरीर का वर्ण ऐसा है, वह इस प्रकार का कपड़ा पहनता है। मानों इन गुणों के आधार पर हमने उस विशिष्ट व्यक्ति को समझाने की चेष्टा की। अब हो सकता है कि दो बिल्कुल साक्षात् जुड़वा भाई हैं, समान रूप से ही कपड़े पहनते हैं, तब जहाँ पर ये सारे बाहरी गुण समान दिखाई देते हैं, तो फिर कैसे समझाएँ? तब उस मनुष्य की क्रिया के बारे में बताते हैं। क्योंकि यदि हम बारीकी से देखें, तो दोनों की क्रियाओं में कहीं-न-कहीं, कुछ-न-कुछ अन्तर तो होगा ही।

मैंने दो जुड़वा बहनों को देखा था। आप उन्हें बिल्कुल पास से भी कितनी ही बार देखिए, परन्तु वे बिल्कुल ही समझ में नहीं आतीं कि उनमें से किसका नाम अजया और किसका नाम विजया है? मैंने कई बार पूछा। एक लड़की आकर बोली, अच्छा बताइये, मैं अजया हूँ या विजया? कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। क्योंकि दोनों के गुणों में समानता थी। उसकी माँ ने बताया कि महाराज ! अब हम लोग समझ लेते हैं। कैसे समझ लेते हैं? क्योंकि जब यह बोलती है न, तो आप देखेंगे कि उसके होंठ एक तरफ ऐसे फड़कते हैं। हमने कहा – इतनी बारीकी से कौन देखेगा कि उसके होठ किधर फड़कते हैं? आप दोनों के बोलते समय जरा देखिए। सचमुच मैंने देखा कि जब अजया बोलती है, तो विशेष प्रकार से उसके ओठों का स्पन्दन होता है। तो कहीं-न-कहीं क्रिया में भेद होता है। अत: यहाँ पर क्रिया के माध्यम से व्यक्ति को बताया गया। किसी वस्तु को जाति, गुण और क्रिया से बताते हैं।

(क्रमशः)

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

५६. सच्चा आत्मविश्वास ही श्रद्धा है

हमें सर्वदा स्मरण रखना होगा कि आध्यात्मिकता ही हमारा मेरुदण्ड है और जिस मार्ग की मैं चर्चा कर रहा था, उस पर चलने के लिये हमें एक मार्गदर्शक की आवश्यकता है। यदि तुम लोगों में कोई ऐसा व्यक्ति हो, जो इस बात पर विश्वास नहीं करता हो, यदि हमारे यहाँ कोई ऐसा हिन्दू बालक हो, जो यह विश्वास करने के लिए तत्पर न हो कि हमारा धर्म पूर्णत: आध्यात्मिक है, तो मैं उसे हिन्दू मानने को तैयार नहीं हूँ।

मुझे याद है, एक बार मैंने कश्मीर राज्य के किसी गाँव में एक वृद्ध औरत से बातचीत के दौरान पूछा था, "तुम किस धर्म को मानती हो?"

इस पर वृद्धा ने तत्काल उत्तर दिया था, "प्रभु को धन्यवाद कि उसकी कृपा से मैं मुसलमान हूँ।"

इसके बाद किसी हिन्दू से भी यही प्रश्न पूछा, तो उसने साधारण ढंग से कह दिया, "मैं हिन्दू हूँ।"

मुझे कठोपनिषद का वह महावाक्य स्मरण आता है – 'श्रद्धा' या अद्भुत विश्वास। इस 'श्रद्धा' का एक सुन्दर दृष्टान्त नचिकेता के जीवन में दिखायी देता है। इस श्रद्धा का प्रचार करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। मैं तुम लोगों से एक बार फिर कहना चाहता हूँ कि यह श्रद्धा ही मानवता तथा सभी धर्मों का एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। सबसे पहले अपने आप पर विश्वास करने का अभ्यास करो। यह जान लो कि भले ही कोई व्यक्ति पानी के एक छोटे-से बुलबुले के समान हो और दूसरा व्यक्ति पर्वताकार तरंग के समान, परन्तु उस छोटे-से बुलबुले और विशालकाय तरंग, दोनों के ही पीछे अनन्त समुद्र विद्यमान है। (५/३३४)

५७. वैदिक काल में नारियों की अवस्था

तुम्हें स्मरण होगा कि महाराजा जनक की राजसभा में महर्षि याज्ञवल्क्य से किस प्रकार के प्रश्न पूछे गये थे? उनकी परीक्षा लेनेवालों में प्रमुख थी ब्रह्मवादिनी वाचक्नवी (गार्गी)। उसने कहा था, "मेरे प्रश्न मानो कुशल धनुर्धर के हाथ में दो चमकते बाणों के समान हैं। वहाँ उनके नारी होने पर कोई टिप्पणी तक नहीं की गयी है।

हमारे प्राचीन गुरुकुलों में बालक और बालिकाएँ समान रूप से शिक्षा ग्रहण करते थे । इससे अधिक साम्य भाव और क्या हो सकता है? हमारे संस्कृत नाटकों को पढ़कर देखो, शकुन्तला का उपाख्यान पढ़ो और फिर देखो, टेनिसन के 'प्रिंसेस' ('राजकुमारी') काव्य में हमारे लिए क्या कोई नयी शिक्षाप्रद बात प्राप्त हो सकती है? (४/२६७)

५८. सर्वप्रथम सक्रिय बनो

अपने देश में एक बार मेरी एक व्यक्ति के साथ मुलाकात हुई। मैं पहले से ही जानता था कि वह बड़ा आलसी और निर्बुद्धि है। वह न तो कुछ जानता था और न उसे कुछ जानने की इच्छा ही थी। वह पशुओं के समान अपना जीवन बिता रहा था।

उसने मुझसे पूछा, "भगवान की प्राप्ति के लिए मुझे क्या करना चाहिए? मैं किस प्रकार मुक्ति पा सकूँगा?"

मैंने पूछा, "क्या तुम झूठ बोल सकते हो?"

उसने उत्तर दिया, "नहीं"।

मैंने कहा, "तब तो तुम पहले झूठ बोलना सीखो। पशुओं या काष्ठ के समान जड़वत जीवन बिताने की अपेक्षा झूठ बोलना कहीं अधिक अच्छा है, तुम अकर्मण्य हो। निश्चय ही तुम उस सर्वोच्च निष्क्रिय अवस्था तक नहीं पहुँचे हो, जो सभी क्रियाओं के अतीत और परम शान्तिपूर्ण होती है। तुम तो इतने जड़-भावापन्न हो कि तुममें कुछ बुरा कर्म करने की भी क्षमता नहीं है।"

वैसे तो ऐसे तामसिक व्यक्ति प्राय: नहीं दिखते। मैं तो उसके साथ हँसी कर रहा था। परन्तु मेरे कहने का तात्पर्य यह था कि सम्पूर्ण निष्क्रिय अवस्था या शान्तभाव को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को कर्मशीलता से होकर जाना होगा। (३/१४)

साधक-जीवन कैसा हो? (७)

स्वामी सत्यरूपानन्द,
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(ईश्वरप्राप्ति के लिये जिज्ञासु साधना में प्रयत्नशील रहते हैं। किन्तु प्राय: वे उन चीजों की उपेक्षा कर जाते हैं, जिन छोटी-छोटी चीजों से साधक-जीवन ईश्वर की ओर अग्रसर होता है। एक साधक का जीवन कैसा होना चाहिये और उसे अपने जीवन में किन-किन चीजों का ध्यान रखना चाहिये, इस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से इस व्याख्यान में चर्चा की गयी है। प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर द्वारा आयोजित आध्यात्मिक शिविर में मार्च, २०११ में दिया था। विवेक-ज्योति के पाठकों हेतु इसका टेप से अनुलिखन नागपुर की सुश्री चित्रा तायडे और कुमारी मिनल जोशी ने तथा सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

अब थोड़ी-सी चर्चा अन्तर्मुखता पर करें। बहिर्मुखी इन्द्रियाँ मन के साथ हमें बाहर ले जा रही हैं। व्यक्ति का एक अन्तर्मुखी स्वभाव भी होता है। हम सबका है। किन्तु इसके लिये हमने कभी क्षणभर के लिये भी समय नहीं दिया है। जहाँ जैसी भी स्थिति हो, जिस उम्र में भी, कभी आध्यात्मिक मार्ग में देरी नहीं होती है। जब तुम जागे तभी सबेरा।

अपने अन्तर्मुखी होने का या भीतर के व्यक्तित्व को देखने का पहला चरण है कि आप अकेले रहने का अभ्यास करें। आप पाँच-सात-दस मिनट से प्रारम्भ करें। घर में ही बहुत बार कठिनाई होती है। ऐसे कुछ बेचारों को मैंने देखा है। हमारे छत्तीसगढ़ की बात है। एक डी. लिट् प्रिंसिपल थे। बाद में बड़े ऊँचे पद पर किसी सरकारी विभाग के डायरेक्टर संचालक हो गये। वहाँ प्रवचन के लिये मेरा जाना होता है। वे एकदिन मेरे पास आये और कहने लगे, महाराज मैं आपसे व्यक्तिगत रूप से मिलना चाहता हूँ। बिलासपुर में एक प्राइवेट आश्रम है। एक-दो महीने में मैं एक बार वहाँ जाता हूँ। प्रवचन के बाद जिस कमरे में मैं था, उसमें वे बेचारे आये। सामान्यत: उसमें दूसरे लोग नहीं आते हैं। उन्होंने दरवाजा खोल दिया और मेरा पैर पकड़कर बहुत रोने लगे। फिर थोड़ी देर में शान्त हुए। उम्र हो गई है और वे रिटायर्ड हो गये हैं। मैंने पूछा – क्या बात है? इतना क्या कष्ट है आपको? तो वे कहने लगे, 'महाराज मैं क्या निवेदन करू आपसे !' वे मेरे से १०-११ साल छोटे हैं। 'आप तो मेरे बड़े भाई, पिता के समान ही हैं। मैं आपके पास इसलिये आ सका हूँ कि मेरी पत्नी घर से बाहर गई हैं।' उनका एक पुत्र कलेक्टर है और दूसरा पुत्र भाभा कम्पनी में अफसर है। 'तो वे वहाँ गयी हुई हैं। इसलिये मैं आ सका। नहीं तो, यदि उनके रहते मैं आपके पास आ जाता, तो वे मेरी चमड़ी उधेड़ देतीं।' मैंने पूछा ऐसा क्यों है भाई? 'क्योंकि वह भी एक बहुत बड़े कॉलेज की प्रिंसिपल होकर रिटायर्ड हुई थी।' जैसे नेवला और साँप एक-दूसरे के शत्रु हैं, वैसे ही वे महामाया आध्यात्मिक विचार की ऐसी शत्रु थीं। बेचारे वे क्या पढ़ते हैं, इसे भी देखतीं। यदि गलती से कहीं उन्होंने देखा कि ये कोई आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ रहे हैं, तो वे डाँटते हुये कहतीं – ये क्या किताब है? इसने देश को बर्बाद कर दिया है, छोकरों को बर्बाद कर दिया है, आप इतने पढ़े-लिखे बुद्धिमान हैं, आपको और कोई किताब पढ़ने को नहीं मिली? वे महामाया अंग्रेजी में एम.ए., पी.एच.डी. हैं। जितने उपन्यास अंग्रेजी में हैं, स्वयं सब पढ़ती हैं।

उन्होंने कहा – महाराज ! हमलोग जीवन की सन्ध्या में आ गए हैं। मैं ब्राह्मण आदमी हूँ। जब जनेऊ मिला था, तब बचपन से मुझे गायत्री मन्त्र करने का आदेश मिला था। वे उसे भी नहीं करने देतीं। वे कहती हैं कि अब इसकी क्या आवश्यकता है? भले ही एक बार कर लो। हमेशा जपने की क्या आवश्यकता है? मैंने सोकर जप करना शुरु किया तो, उन्होंने कहा – क्यों लेटे हैं? क्या कर रहे हैं लेटकर? इस तरह की पीड़ा से मैं पीड़ित था। तो घर में चुप रहने पर ऐसी भी स्थिति कभी-कभी आ जाती है। यद्यपि यह अपवाद है। यह कुलटा पत्नी की वृत्ति और दुर्बल पति की वृत्ति हममें से अधिकांश के भीतर है।

आप सब गृहस्थ हैं। हम लोग भी गृहस्थ के घर से आये हैं। यह कुलटावृत्ति प्रबल होकर हमें ईश्वर की ओर बढ़ने से रोकती है। तब इससे बचने के लिये क्या करना चाहिये? हम न्यूनतम से प्रारम्भ करें और सरलतम का अभ्यास करें।

मैं आपसे अन्तर्मुखी वृत्ति की चर्चा कर रहा था। आपमें से बहुत से लोग दीक्षित हैं। आप दस-पन्द्रह मिनट अकेले रहना शुरु करें। यदि ऐसी सुविधा नहीं हो रही है, तो रात में उठने की आदत डालें। जैसे हमलोग रात में शौच, लघुशंका आदि के लिये उठते हैं और फिर सो जाते हैं। उसी प्रकार जब पत्नी-बच्चे सब सोये हैं, उस समय उठकर पाँच मिनट चुपचाप बैठें और जैसे टी.वी. देखते हैं, वैसे

अपने मन या इन्द्रियों को देखें। उसमें बाहर की भी याद आयेगी, तो आने दीजिए। किसी स्मृति से जुड़िये मत। धीरे-धीरे आत्मनिरीक्षण कीजिये। इन शब्दों को याद रखें। ये आध्यात्मिकता के लिये परम आवश्यक हैं। इसके बिना आध्यात्मिकता नहीं हो सकेगी। अब तक हम बाहर देखने के अभ्यस्त थे। किन्तु अब हम अन्तर्निरीक्षण करने का अभ्यास करेंगे। हमारे एक बहुत अच्छे सिविल इंजिनीयर भक्त हैं । उनका बहुत नाम था। वे एक बहुत बड़े कारखाने में काम करते थे। वे दिन-रात कई घण्टे काम करते थे। पिछले वर्ष सेवानिवृत्त हो गये। उन्होंने लगभग ३५-३६ वर्ष नौकरी की। उन्हें ३ लाख रुपये का पुरस्कार इसलिये मिला कि ३५ वर्ष में एक दिन भी उन्होंने छुट्टी नहीं ली थी। पढ़ने में बड़े तेज थे। फिर १८-२० घण्टे काम करने की आदत थी। ऊँचे पद पर बड़े इंजिनीयर थे। सैकड़ों योग्य इंजिनीयर और मजदूर आदि उनके अधीन थे। चिमनी की मरम्मत हो रही है। यह काम तो मिस्त्री का है। किन्तु वे बोले, चलो हम देखेंगे। अब साहब जा रहे हैं, तो उनके पीछे सबकी लाइन लग गयी। सब चले सर के पीछे। चींटी की तरह लम्बी लाइन लग गयी। दूसरे लोग इनको श्राप दे देते। उनसे ज्यादा उनकी बीवियाँ उन्हें श्राप देते हुए कहतीं कि कौन ऐसा साहब आ गया, जो रात के दो बजे हमारे घरवाले को बुलाता है।

मैं इधर-उधर व्याख्यान देने के लिये यात्रा पर गया था। लौटकर आया, तो एक साधु ने मुझे बताया कि वे इंजीनियर साहेब अस्पताल में भर्ती हैं। मैंने पूछा, अरे ! किस अस्पताल में भर्ती हैं? क्या हुआ? उन्होंने बताया कि महाराज वे हार्ट वाले अस्पताल में हैं।

उनकी पत्नी ने कई बार फोन किया, तो मैं गया। वे बिल्कुल दुबले-पतले थे। बड़े सज्जन व्यक्ति थे। सिगरेट, पान आदि की कोई बुरी आदत नहीं थी। ज्यादा मिठाई आदि नहीं खाते थे। सामान्य भोजन करते थे। उनको बहुत अधिक कोलस्ट्रॉल था, जिससे हृदय में ब्लोकेज हो गया। डॉक्टरों ने कहा कि आपका जीवन खतरे में है। यदि आपका ऑपरेशन नहीं होगा, तो नहीं बच पायेंगे। उनकी पत्नी रोने लगीं। मैंने एक डॉक्टर मित्र से पूछा, तो वे कहने लगे, महाराज वे गम्भीर हैं। तब मैंने कहा कि ठीक है ऑपरेशन करा लो।

मैंने अपने हृदय-रोग के विशेषज्ञ डॉक्टर मित्र से पूछा कि भाई ऐसा कैसे हो गया? उन्होंने बताया महाराज हमारी किताबों में लिखा है – stress effect - over stress & strain effect यह तुरन्त नहीं हुआ है। अभी दो-तीन महिनों में भी नहीं हुआ है। इनको पता नहीं लगा। इनको धीरे-धीरे stress effect होता गया। इन्होंने ध्यान नहीं दिया और आज यह स्थिति आ गयी। ये हमेशा व्यस्त रहे। काम के पीछे बेचैन हैं। बिल्कुल न कभी टी.वी. देखें, न अखबार पढ़ें। दिन-रात भवन बनाते रहे। नया बनायें, नहीं तो तोड़कर बनायें। ये सबसे बड़े अधिकारी हैं, इनको कौन रोके और समझाये? इनको चौबीसों घण्टे काम का नशा था। काम का नशा आपको दस मिनिट भी बैठने नहीं देगा। लेकिन यदि आप अभ्यास करेंगे, तो धीरे-धीरे ठीक हो जायेगा।

मान लीजिये आप आँख बन्द कर चुपचाप बैठने का अभ्यास कर रहे हैं। उसमें कभी बाहर के दृश्य आयेंगे, तो आने दीजिए। उधर ध्यान मत दीजिये। भीतर थोड़ा देखने का प्रयत्न कीजिये कि कौन सी इन्द्रिय हमारी प्रबल हो रही है। मान लीजिये कि आप स्वाद के दास हैं। अब आप तुरन्त कल से ही स्वाद की दासता से मुक्त नहीं हो सकते हैं। तब क्या करें? आप सूची बनाइये कि कौन-कौन सी चीजें आपको प्रिय हैं। मान लीजिये कि आपको १०-१५ चीजें प्रिय हैं। उनमें से चटनी और अचार आप को बहुत प्रिय है। आप अपनी पत्नी, माँ, पुत्री जो भी घर में हो, उनसे कहिये कि कल से तुम मुझे चार प्रकार की चटनी देना। किन्तु अचार मत देना। इस तरह आपने अचार खाना छोड़ दिया। फिर धीरे-धीरे चटनी खाना भी छोड़ दीजिये। उसके बाद क्रमशः स्वाद आदि के अन्य वस्तुओं को भी छोड़ दीजिये। आप ध्यान रखें कि जिस चीज को आप रोकते हैं, वह उतनी ही तीव्रता से आक्रमण करती है। युद्ध का भी यही नियम है। आपने अचार और चटनी खाना बन्द कर दिया, तो ये बड़ी तीव्रता से आप पर आक्रमण करेंगे। फिर अपने मन को समझाइये कि ये चीजें तुम्हें परम आनन्द प्रदान करने में बाधक हैं। इनके क्षणिक आनन्द के धोखे में मत पड़ो। इससे बड़े परम सुख परमात्मा के लिये इनका त्याग आवश्यक है। ऐसा धीरे-धीरे समझाने से ऐसी आदतें जिन्होंने हमें बाँधकर रखा है, वे सब छूटने लगेंगी। आप एक दिन पूर्णतः इन्द्रियों की दासता से मुक्त हो जायेंगे। हमारा आध्यात्मिक-जीवन, साधक-जीवन यहीं से शुरु होगा। यह मेरी बात नहीं है। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं गीता में कह रहे हैं – तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य – पहले इन्द्रियों का संयम करो, नियमन करो।

जीवन एक यात्रा है। हम सभी बाहर की यात्रा में भाग रहे हैं, पर यह बाहर की यात्रा आज तक किसी की भी समाप्त नहीं हुई और न कभी समाप्त होने वाली है। तो

आपकी-हमारी कैसे समाप्त होगी? हाँ, हमारी अन्तर्यात्रा समाप्त होगी। क्योंकि अन्तर्यात्रा का लक्ष्य निश्चित है। गुरु और भगवान की कृपा हो, तो इसी जीवन में यात्रा समाप्त हो सकती है। नहीं तो – पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनं – बार-बार जन्म लेकर दुख भोगना पड़ेगा।

हमें अपनी आन्तरिक प्रकृति को देखने का अभ्यास करना चाहिये। अभी हमने अन्तर्यात्रा की सबसे बड़ी बाधाओं को देखा। इसमें एक बाधा क्रोध भी है। हम सबको क्रोध की बहुत बड़ी समस्या रहती है। बहुत से लोग आकर पूछते हैं – महाराज, बहुत क्रोध आता है, क्या करें? आदर्श तो यह है कि साधक-साधिका के जीवन में क्रोध नहीं आना चाहिये। आये भी तो वह प्रगट न हो। ठाकुर कहते हैं – मोड़ फिरिये दाव – दिशा घुमा दो। क्रोध की दिशा घुमा सकते हैं। अब तक आप पत्नी पर क्रोध करना परम धर्म समझते थे। अब थोड़ा अपने ऊपर क्रोध करें। आप भी कृपा करके सोचिए कि उन पर क्रोध न करूँ, थोड़ा अपनी ओर घुमा दूँ। अपने पर क्रोध इसलिये करें कि आप चाहते हैं कि आपको क्रोध न आये, फिर भी आपको क्रोध आता है। आपने पत्नी को कहा कि आप रात में भोजन नहीं करेंगे। पत्नी ने फिर से रात में भोजन करने के लिये पूछ दिया, तो आपने पत्नी को डाँट दिया – मैंने तुझे दस बार कहा कि मैं रात में भोजन नहीं करूँगा। आपने पत्नी बेचारी को तीन बार डाँटा। ये अलग बात है कि पत्नी ने छः बार डाँट दिया। उसके बदले का गणित ठीक था। यदि आप अपने पर क्रोध करेंगे, तो आपमें धीरे-धीरे सहन शक्ति आयेगी। यह शक्ति सबमें है।

समय कम है, इसलिये एक बात आप को बता दूँ, जो मैंने महापुरुषों से सुना है, उनके जीवन में देखा है या थोड़ा पढ़ा है। इसमें मेरा कुछ नहीं है। प्रत्येक मनुष्य में यह शक्ति है कि वह अपने इसी जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन ला सकता है। हम-सबके भीतर भी वह शक्ति है। इसका प्रमाण क्या है? हम लोग अन्तर्दृष्टि नहीं रखते। कितनी बातों में हम शान्त नहीं रह पाते। विशेषकर माताओं में यह शान्ति दिखती है। आपमें भी है। मान लीजिये आप किसी मेले में या बाजार में गये। आपके साथ २-३ वर्ष का बच्चा है। वह आईस्क्रीम खाने का हठ करता है। आपने उसको आईस्क्रीम खरीदकर कहा, लो खाओ। आईस्क्रीम खाओ, किन्तु अंगूठा मत खाओ। अब आपको भी खाने की इच्छा है, लेकिन दुकानदार कहता है कि अब समाप्त हो गया। माता-पिता कहते हैं, ठीक है, हम दूसरी बार खा लेगें। पिता ने थोड़ा-सा बच्चे से माँगकर चाट लिया। थोड़ी-सी माँ भी चाट ली। लेकिन अपनी इच्छाओं को रोककर माता बच्चे को अधिक खिलाती है। आप सबको बताने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन माँ में यह सहनशीलता, यह शान्ति कहाँ से आयी? आप को कोई सजा तो नहीं होनेवाली थी? कोई पिस्तौल लेकर तो नहीं खड़ा था कि अपने लड़के को तुम आईस्क्रीम नहीं खिलाओगी, तो तुमको गोली मार देंगे? क्योंकि आपमें वह सहन-शक्ति है। आपके भीतर वह शान्ति है। अभी तक आपने उसका उपयोग नहीं किया था। आपने विचार किया कि ऐसी परिस्थिति आ गई है कि दुकान बन्द हो रही है। छोटे बच्चे की जगह अगर मैं खा जाऊँ, तो यह रोने लगेगा। तब आपने बच्चे को खिलाने का निर्णय लिया। ऐसा विचार करना चाहिये और इस शान्ति की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। इसका अपमान नहीं करना चाहिये। छोटी-से-छोटी शान्ति हमारे भीतर है। जो हमें रोक सकती है। कैसे रोक सकती है?

आपको चाय पीने की इच्छा हो रही है। चार बजे की घण्टी बजते ही आप चाय पीने के लिये आ जाते थे। अब जब तक मेरा मुहँ बन्द नहीं हो जाता, तब तक आप बैठे रहेंगे। यहाँ आपने स्वयं को रोका है कि नहीं? इसलिये अपनी ओर दृष्टि डालें। आत्मनिरीक्षण करें। यह शान्ति सब समय प्रकाशित हो रही है। मनुष्य मूल रूप से परम स्वतन्त्र है। वह परम शान्ति पाना चाहता है। स्वाधीनता उसके रग-रग में है। परम शान्ति हम सबके भीतर विद्यमान है। हम उनकी ओर दृष्टि नहीं डाल पाते हैं। इसलिये उससे वंचित हो जाते हैं।

अन्तर्व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त करने के लिये हमें आत्मनिरीक्षण करना पड़ेगा। उसके लिये बहिर्मुखी प्रवृत्ति से हटना पड़ेगा। चाहे पाँच मिनट के लिये ही क्यों न हो, जब तक अन्तर्मुखी प्रवृत्ति प्रबल नहीं होती, हमें प्रयत्न करते रहना पड़ेगा। प्रारम्भ में बहिर्मुखी प्रवृत्ति बहुत प्रबल रहेगी, रहती भी है, फिर भी प्रबल से प्रबलतम बहिर्मुखी प्रवृत्ति को निवृत्त करने की सामर्थ्य प्रत्येक मनुष्य के भीतर है। इस जन्म में, सौ जन्म बाद या लाख जन्म बाद हो, निवृत्ति में आना ही पड़ेगा। बिना निवृत्ति के मोक्ष नहीं मिलेगा, शान्ति नहीं मिलेगी। अतः यह निवृत्ति का कार्य, निवृत्ति का मार्ग क्यों न आज से ही प्रारम्भ कर दें। अन्तर्प्रकृति क्या है? इस की चर्चा प्रभु कृपा से आगामी कल होगी। आज यहीं समाप्त। **(क्रमशः)**

दु:ख का सकारात्मक स्वरूप

ब्रह्मचारी पावनचैतन्य, बेलूड़ मठ, हावड़ा

(गतांक से आगे)

विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ मानव सभ्यता के रहन-सहन में अत्यधिक उन्नति हुई है। परन्तु उसके साथ-ही-साथ मनुष्य की चिन्ताएँ, मानसिक तनाव और दु:खों में वृद्धि हो रही है। मनुष्य की संवेदना कम हो गयी है। हमने बौद्धिक प्रगति तो अवश्य की है पर हमारा हृदय संकीर्ण हो गया है। अब प्रश्न यह है कि दु:ख जैसी नकरात्मक प्रतीत होनेवाली परिस्थिति को हम सकारात्मक कैसे लें। वास्तविकता तो यह है कि हम जगत को नहीं बदल सकते, पर स्वयं को अवश्य बदल सकते हैं। आइए हम यहीं से प्रारम्भ करें।

एक बार एक महिला ने एक संन्यासी से प्रश्न किया – महाराज मुझसे कोई प्रेम नहीं करता, मैं बहुत दु:खी हूँ। मुझे कुछ उपदेश दीजिए। संन्यासी ने कहा – दृष्टि बदलने से ही सृष्टि बदल जाती है। अपनी दृष्टि बदल डालो। चारों और प्रत्येक परिस्थितियों में सकारात्मक सोच उत्पन्न करो। मैं जब सुबह उठकर चप्पल पहनता हूँ, तो वह चप्पल कष्ट सहकर भी मुझे कुछ नहीं कहती, मेरा ब्रश मेरे मुख की दुर्गंध के बावजूद प्रसन्नता से सफाई करता है, मेरे कपड़े स्वयं सर्दी पाकर मुझे सर्दी से बचाते हैं, मेरा बिस्तर मुझे सारी रात वहन करता है। इस प्रकार मेरी पूरी दिनचर्या को देखकर मैं प्रेम ही प्रेम पाता हूँ। महिला ने संन्यासी की ओर देखा, जिसके तन को ढकने के लिये मात्र एक धोती और एक चादर थी, एक हाथ में कमण्डलु और दूसरे में एक भिक्षापात्र था। इसके बाद उसने अपनी ओर देखा, जिसने कीमती साड़ी और नाना आभूषण पहने हुए थे, अपने सौन्दर्य के लिये पर्स में विभिन्न द्रव्य थे, आने-जाने के लिए आरामदायक वाहन था। महिला को अनुभव हुआ कि सचमुच उसे अपनी दृष्टि बदलनी पड़ेगी। ईश्वर ने उसे कुछ कम नहीं दिया है, उसे सन्तुष्ट होना चाहिए। उसने अपनी दृष्टि बदली, तो उसकी सृष्टि बदल गई।

क्या हम विषम परिस्थितियाँ आने पर टूट जाते हैं या अपनी पूरी शक्ति के साथ उन परिस्थितियों पर टूट पड़ते हैं? वास्तव में हम जिन परिस्थितियों से भागना चाहते हैं, वे हमारा पीछा करती रहती हैं, किन्तु हम जिनका सामना करते हैं, वे हमसे दूर भाग जाती हैं। गीता में भगवान अर्जुन से यही कहते हैं –

'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।

अर्थात् अपने द्वारा अपना उद्धार करें और अपने को अधोगति में न डालें। क्योंकि यह मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र और स्वयं ही अपना शत्रु है।

दु:ख आने पर हम अपने वास्तविक मित्रों और सम्बन्धियों को पहचान पाते हैं। उससे भी अधिक हमें यह भी ज्ञात होता है कि ईश्वर ही हमारा वास्तविक सहारा है। जब दु:ख के बादल चारों ओर से घिर आते हैं और कहीं कोई आलम्ब नहीं दीखता, तो मन स्वत: परमात्मा की शरण में चला जाता है। सुख में तो सभी परमहंस की भाँति विचरण कर सकते हैं, किन्तु दु:ख ही वास्तविकता की कलई खोल देता है। दु:ख हमें यथार्थ का अनुभव कराता है और अनुभव सारे ज्ञान की जननी है।

जिन्होंने स्वयं दु:ख का अनुभव किया है वे ही दूसरों के दु:ख का अनुभव कर सकते हैं। विषम स्थिति में ही महात्माओं की महानता प्रकट होती है। जैसे ईसा मसीह ने अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारों को देखकर ईश्वर से यही प्रार्थना की कि हे प्रभु ! इन्हें क्षमा कर दो, क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।

यदि हम महापुरुषों का जीवन देखें, तो पायेंगे कि उन सबके जीवन में ऐसे अनगिनत दु:ख आये हैं, परन्तु जिस प्रकार सोने को तपाने पर सोना अधिक निखर जाता है, वैसे ही उन सबका जीवन उन परिस्थितियों से निखर गया था। स्वामीजी कहते हैं, "कभी-कभी तो दुख सुख से भी बड़ा शिक्षक हो जाता है। यदि हम संसार के महापुरुषों के चरित्र का अध्ययन करें, तो मैं कह सकता हूँ कि अधिकांश दृष्टान्तों में हम यही देखेंगे कि सुख की अपेक्षा दुख ने तथा सम्पत्ति की अपेक्षा विपत्ति ने ही उन्हें अधिक शिक्षा दी है एवं प्रशंसा की अपेक्षा आघातों ने ही उनकी अन्तस्थ अग्नि को अधिक प्रस्फुरित किया है।" (वि. साहित्य ३/३)

सत्य और पवित्रता में अद्भुत शक्ति होती है वह प्रचण्ड दुखों का सामना कर सकती है। महापुरुषों ने यथार्थत: मन-वाणी और कर्म से अपने जीवन में इसी का पालन किया है। यदि हम अपने जीवन का निष्कपट अवलोकन करें, तो हम पायेंगे की दुखों ने हमें सबल बनाया है और बाहर से आनेवाली सहायता ने हमें दुर्बल किया है।

जीवन की वेदनाएँ हमें तोड़ सकती हैं या हमारे जीवन की दिशा मोड़ सकती हैं। प्रश्न यह है कि हम परिस्थितियों को कैसे लेते हैं। यदि हम शास्त्रों और सन्त-महापुरुषों के उपदेशों को देखें, तो यह स्पष्ट पायेंगे कि कहीं भी, किसी ने भी परिस्थितियों से पलायन का मार्ग नहीं बताया होगा। जबकि संघर्ष करना ही एकमात्र इसका समाधान बताया गया है। महाभारत में विषादयुक्त अर्जुन को पलायन न कर अपने कर्तव्य को करने का उपदेश देते हुए श्रीभगवान से गीता का प्रादुर्भाव हुआ।

यदि हमें ऐसा प्रतीत भी हो कि हमें कोई दु:ख-कष्ट पहुँचा रहा है, तो उनके साथ हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए, इस पर स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज एक सुन्दर उदाहरण देते हैं। ''एक साधु नदी के किनारे बैठकर जप-ध्यान करते थे। एक दिन उसने देखा, एक बिच्छू पानी में बहता चला जा रहा है। उनके मन में दया आयी। वे ज्योंही बिच्छू को हाथ से उठाकर पानी से बाहर निकालने लगे, त्योंही उसने डंक मार दिया। साधु दर्द के मारे छटपटाने लगे। कुछ समय बाद फिर से बिच्छू पानी में गिरकर डूबने लगा। यह देख साधु ने फिर से उसे उठा दिया। बिच्छू ने पुन: उन्हें डंक मारा। कुछ समय बाद फिर से बिच्छू को पानी में गिरा देखकर साधु जब उसे पुन: उठाने जा रहे थे, तो एक व्यक्ति ने कहा, 'देखिए, बिच्छू तो आपको बार-बार डंक मार रहा है और और आप हैं कि फिर से उसे उठाने जा रहे हैं !' उसकी बात सुनकर साधु ने उत्तर दिया, ''बिच्छू का स्वभाव है डंक मारना, अत: वह डंक मार रहा है, साधु का स्वभाव है परोपकार करना, अत: मैं वही करूँगा। वह मुझे डंक मार रहा है, इसलिये मैं निर्दय क्यों होऊँ?'' यह कहकर उन्होंने पुन: बिच्छू को जल से उठाकर बहुत दूर फेंक दिया, जिससे वह पुन: जल में न गिरे सके। सज्जन लोग अपना स्वभाव नहीं छोड़ते।' (ध्यान, धर्म तथा साधना /१२०)

'परोपकार: पुण्याय पापाय परपीडनम्' – परोपकार ही पुण्य और परपीड़न ही पाप है। जिनका जैसा संस्कार है, वे वैसा ही व्यवहार करते हैं, चाहे उनके साथ कैसा भी व्यवहार किया जाय। धर्म के पथिक अपने सुख-दुख की चिन्ता से अधिक आदर्श का अनुकरण करते हैं।

अपने दुख का दोष किसी पर मढ़ने से अच्छा होगा कि हम यह मान लें कि दु:खों से संघर्ष कर उस पर विजय पाने की क्षमता हममें नहीं है। परिस्थितियाँ हमारे लिए एक चुनौती है और वीर इसका सामना करते हैं। दु:ख हमें वीर होने का सुअवसर तो देता है, साथ-ही-साथ हमें धैर्य का पाठ भी पढ़ाता है।

जो भी हो जगत को हम अगर निष्पक्ष दृष्टि से देखें, तो हम पायेंगे कि अनेकों लोग हमसे अधिक दुखी हैं। हमारे अधिकांश दुखों का कारण हमारी वासनाएँ हैं। हमने अपनी आवश्यकताओं को बढ़ा लिया है। हम उसके संग्रह में अधिक व्यस्त हैं, जिसे एक दिन हमें छोड़कर चले जाना है और उसके प्रति हमारी पलक भी नहीं झपकती जो हमारे साथ जाने वाला है। हम अपनी जागतिक वासनाओं का जितना विसर्जन करेंगे, उतना ही हम आनन्दमय जीवन के भागीदार होंगे।

आशा हि परमं दु:खं नैराश्यं परमं सुखम्

जब हम किसी का भला करते हैं, तो हम चाहते हैं कि वह हमारे प्रति कृतज्ञ हो या हमारा भी भला करे या हमें धन्यवाद कहे, परन्तु जब हम यह उनसे नहीं पाते, तब हमारी यही आशा हमारे दुख का कारण हो जाती है, बल्कि हमें यह मानकर कृतज्ञ होना चाहिये कि उसके द्वारा हमें सेवा का अवसर प्राप्त हुआ। आशा से ही आसक्ति होती है और यही आसक्ति बन्धन का द्वार है। अत: किसी से कोई आशा नहीं करनी चाहिए। इसलिये कहते हैं, 'नेकी कर दरिया में डाल।'

असन्तोष दुख का कारण है। लोभ से मन और इन्द्रियाँ चंचल होती हैं, उससे मनुष्य की बुद्धि वैसे ही नष्ट हो जाती है, जैसे बिना अभ्यास के विद्या। कहा गया है –

असंतोषोऽसुखायेति लोभादिन्द्रियसम्भ्रम:।
ततोऽस्य नश्यति प्रज्ञा विधेवाभ्यासवर्जिता ।।

(महाभारत/शान्ति पर्व, मोक्षधर्म पर्व-२५)

कुछ लोग रिक्शा चलाते हैं, सड़क के किनारे छोटी-सी दुकान चलाते हैं, पर वे सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह करते हैं। कुछ लोग वातानुकूलित कार्यालयों में कार्य करते हैं,

कई गाड़ियों के मालिक हैं पर असंतोष के कारण वे चिन्ता और निराशा का जीवन बिताते हैं। इस प्रकार हमारे दु:ख का एक कारण हमारा असंतोष भी हो सकता है। यदि हम सुखपूर्वक रहना चाहें, तो जीवन में सन्तोष आवश्यक है।

दु:खदर्शन वैराग्य का जनक होता है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, जिस दिन पुत्र शोक हो, उस दिन कोई भी दम्पति भोग नहीं कर सकते। वास्तव में किसी स्वजन की मृत्यु मनुष्य में वैराग्य उत्पन्न करती है। जगत की अनित्यता का बोध कराती है। गौतम बुद्ध का जीवन ही देखें। कथा है कि गौतम के पिता ने दु:खद अनुभवों से उन्हें बचाने के लिये पूरी सावधानी बरती थी। संयोग अथवा ईश्वरेच्छा ने उनके पथ में एक दुर्बल और जरा-जर्जर वृद्ध, एक रोगी, एक मृत मनुष्य और परिव्राजक संन्यासी को ला दिया। इन अनुभवों ने उन्हें धार्मिक जीवन द्वारा शान्ति और गम्भीरता प्राप्त करने की प्रेरणा दी।' (गौतम बुद्ध, जीवन और दर्शन, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, राजपाल पब्लिकेशन, ५)

इस प्रकार की घटना हम संत तुकाराम जी के जीवन में पाते हैं। वे कहते हैं – माता-पिता के स्वर्गवास के बाद मैंने संसार के बहुत दु:ख भोगे। अकाल पड़ा, घर में जो कुछ था, वह सब द्रव्य स्वाहा हो गया। द्रव्य के साथ ही प्रतिष्ठा भी धूल में मिल गई। एक स्त्री 'अन्न, अन्न' पुकारती हुई मर गई। मैंने जो-जो व्यवसाय किया उसमें हानि हुई। इससे मुझे बड़ा कष्ट हुआ, मुझे स्वयं ही लज्जा आने लगी। इस प्रकार संसार से असह्य ताप हुआ।' (संत तुकाराम रचित आत्मचरित्र अभंग, २-४ पद)

इस प्रकार जीवन के दु:ख-कष्टों ने उन्हें वैराग्य दिया और वे प्रभु के कीर्तन में मग्न रहने लगे।

रामबोला अपनी पत्नी के बिना नहीं रह सकता था। एक बार उसकी पत्नी मायके गई। रामबोला से न रहा गया। वह रात में ही अपने ससुराल पहुँच गया। अर्धरात्रि को अपने पति के दरवाजा खटखटाने पर उसकी पत्नी ने कड़े शब्दों में कहा कि यदि ऐसी आसक्ति राम में हो जाती, तो तुम्हें आज राम मिल गए होते। इस वाक्य ने विषाक्त बाण से भी अधिक गहरा आघात दिया और रामबोला तत्काल संसार त्यागकर रामनाम में लीन हो गया। वही रामबोला आज विश्वप्रसिद्ध सन्त तुलसीदास हैं।

ब्राह्मसमाज के सदस्य होने पर श्रीरामकृष्ण देव आपत्ति करते थे, क्योंकि वहाँ पुरुष स्त्रियों के सामने बैठकर ध्यान करते थे। किन्तु वे नरेन्द्र को निषेध नहीं करते थे। इस पर मास्टर कहते हैं – तुम्हारे मन का बल अधिक है, इसलिए उन्होंने तुम्हें मना नहीं किया। नरेन्द्र – बहुत दु:ख पाकर तब यह स्थिति हुई है। मास्टर महाशय, आपको दु:ख नहीं मिला। दुख नहीं पाने से ईश्वर में शरणागति नहीं होती। (श्रीरामकृष्णकथामृत – ११३४)

सन्त थॉमस ए केंपिस अपने 'मसीहा के पदचिन्हों पर' में कहते हैं, 'यह भला है कि कभी दुर्भाग्य हों। वे व्यक्ति को अपने अन्त:करण में प्रवेश करने को बाध्य करते हैं, व्यक्ति जान सके कि वह इस संसार में केवल अतिथि है, इसलिए किसी सांसारिक बातों पर विश्वास न रखे।

दूसरे लोग कभी विरोध करें, हमारे बारे में बुरा सोचें, या हमें अपूर्ण मानें, यद्यपि हम सदा उनका भला सोचते और करते हैं, तो उनसे हमें शिक्षा मिलती है।

दुख हमें विनम्र बनाता है और हमें मिथ्याभिमान से दूर रखता है। तब हम ईश्वर की बेहतर खोज करेंगे, और वही हमारे अन्त:करण का साक्षी होगा, जब दूसरे लोग बाहरी रूप से हमारी निन्दा करेंगे या हम पर विश्वास नहीं करेंगे।' (मसीहा के पद चिह्नों पर/ जिल्द १, अध्याय १२/१)

परेशानियों एवं प्रलोभनों में यह सिद्ध होता है कि कौन क्या कर सकता है। इसी में अधिक पुण्य है और उसके गुण और भी सुस्पष्ट हो जाते हैं। बिना परेशानी के रहना कोई विशेष महत्व का नहीं है, पर विपरीत परिस्थिति में जब वह धैर्यपूर्वक आगे बढ़ता है, तो उसके बहुत आगे बढ़ने की आशा है।' (मसीहा के पदचिह्नों पर, जिल्द १, अध्याय १३/४)

जीवन में सुख-दुख दोनों ही पेण्डुलम की भाँति आते-जाते रहते हैं। कोई भी सुख-दुख चिरस्थायी नहीं होता। अत: आज की अमावस्या जीवन में एक दिन पूर्णिमा भी लेकर आयेगी। इन दोनों को स्वीकार कर लेने में हमारी भलाई है। सुख की अनुभूति के लिये भी दुख की आवश्यकता है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, 'दुख रहने पर सुख की अनुभूति होती है।' श्रीमाँ सारदा देवी कहती है – "दुख ईश्वर का उपहार है।" **(समाप्त)**

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

२८२. सद्गुरु जापर कृपा करें

एक बार गजानन महाराज ने शिष्य पीताम्बर से गाँव-गाँव जाकर भक्ति का प्रचार-प्रसार करने को कहा। दूसरे दिन वह कोंडोली नामक ग्राम में जा पहुँचा। पैदल चलने के कारण उसे थकावट महसूस हुई। एक आम के पेड़ के नीचे बैठकर आँखे बन्द कर वह भगवान का नाम-स्मरण करने लगा। पास में ही बहुत से लाल चींटे थे। उन्होंने पीताम्बर को काटना शुरू किया। तब वह वहाँ से उठकर दूसरे पेड़ पर चढ़ गया। वहाँ से जानेवाले लोगों ने उसे पेड़ पर बैठा देखकर पूछा, "तुम कौन हो और पेड़ पर क्यों बैठे हो? पीताम्बर ने बताया कि वह गजानन महाराज का शिष्य है। चींटों के काटने के कारण पेड़ पर बैठ गया है। लोगों को विश्वास नहीं हुआ। उनमें से एक ने कहा, "महाराज तो चमत्कारी संत हैं। एक बार जब वे इस ग्राम में आए थे, तो हमने उन्हें ढोंगी साधु समझकर उनकी परीक्षा लेने के इरादे से इस आम के पेड़ पर आम के फल लाने को कहा था। उन्होंने जब यह चमत्कार करके दिखाया, तो हमारी उनके प्रति श्रद्धा हो गई। यदि तुम भी इस सूखे पेड़ पर कोमल पत्ते पैदा कर दोगे, तो तुम महाराज के शिष्य हो, इस बात पर हमें विश्वास हो जाएगा।" पीताम्बर धर्म-संकट में पड़ गया। उसने सोचा, महाराज ही इस संकट से उबार सकते हैं। अन्यथा वे लोग उसे कहीं पीट न दें। उसने गजानन महाराज से मन-ही-मन प्रार्थना की कि आप ही मेरी रक्षा करें। यदि आपने पेड़ पर नये कोमल पत्ते पैदा न किये, तो ये लोग मुझे मारे बिना नहीं छोड़ेंगे। पीताम्बर की प्रार्थना व्यर्थ नहीं गई। लोग यह देख चकित रह गए कि सूखे पेड़ पर कोमल पत्ते फूट पड़े थे। एक मराठी कवि ने इस प्रसंग को निम्नलिखित शब्दों में काव्यबद्ध किया है –

फुटल्या पालवी वठल्या वृक्षा, घेणे कासया अता परीक्षा।
संभ्रम मनिचा चपर निमाला, कोंडोलीला हर्ष जहाला॥

गुरु की कृपा से प्रत्येक असम्भव कार्य साध्य हो जाता है।

****

विवेक-चूडामणि

श्री शंकराचार्य

अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानन्द

अविनाशी वा अरेऽयमात्मेति श्रुतिरात्मनः।
प्रब्रवीत्यविनाशित्वं विनश्यत्सु विकारिषु ॥५६२॥

अन्वय – 'अरे अयं आत्मा अविनाशी वा' इति श्रुतिः विकारिषु विनश्यत्सु आत्मनः अविनाशित्वं ब्रवीति।

अर्थ – 'अविनाशी वा अरेऽयमात्मा' (अरे, यह आत्मा अविनाशी है) – यह श्रुतिवाक्य विकारी तथा नाशवान देह में रहनेवाली आत्मा के अविनाशित्व की बात कहता है।

पाषाण-वृक्ष-तृण-धान्य-कडङ्कराद्या
दग्धा भवन्ति हि मृदेव यथा तथैव।
देहेन्द्रियासुमन आदि समस्तदृश्यं
ज्ञानाग्निदग्धमुपयाति परात्मभावम् ॥५६३॥

अन्वय – यथा पाषाण-वृक्ष-तृण-धान्य-कडङ्कराद्या दग्धा मृद् एव हि भवन्ति तथा एव देह-इन्द्रिय-आसु-मन आदि समस्तदृश्यं ज्ञानाग्निदग्धं परात्मभावम् उपयाति।

अर्थ – जैसे पत्थर, वृक्ष, घास, धान, भूसी आदि जलने पर मिट्टी में ही परिणत हो जाते हैं; वैसे ही देह, इन्द्रियाँ, प्राण, मन आदि समस्त दृश्य पदार्थ ज्ञानाग्नि में दग्ध हो जाने के बाद शुद्ध आत्म-स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

विलक्षणं यथा ध्वान्तं लीयते भानुतेजसि।
तथैव सकलं दृश्यं ब्रह्मणि प्रविलीयते ॥५६४॥

अन्वय – यथा ध्यान्तं विलक्षणं भानुतेजसि लीयते तथा एव सकलं दृश्यं ब्रह्मणि प्रविलीयते।

अर्थ – अन्धकार जैसे सूर्य के विपरीत-धर्मी होकर भी सूर्य के प्रकाश में विलीन हो जाता है, वैसे ही सारे दृश्य पदार्थ ब्रह्म में ही विलीन हो जाते हैं।

घटे नष्टे यथा व्योम व्योमैव भवति स्फुटम्।
तथैवोपाधिविलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित्स्वयम् ॥५६५॥

अन्वय – यथा घटे नष्टे व्योम, व्योम एव स्फुटम् भवति, तथा एव उपाधिविलये ब्रह्मविद् स्वयम् ब्रह्म एव (भवति)।

अर्थ – जैसे घट के नष्ट होने पर घटाकाश नि:सन्देह महाकाश ही हो जाता है, वैसे ही उपाधियों का नाश हो जाने पर ब्रह्मज्ञ पुरुष स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है।

****

नारी स्वाधीनता के क्षेत्र में श्रीमाँ सारदा का अवदान

स्वामी अमेयानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मिशन, ढाका, बांगलादेश

नारी स्वाधीनता के प्रसंग पर चर्चा करते हुए एक कवि के उद्‌गार याद आते हैं, जिन्होंने बंगाल की नारी की स्थिति का इस प्रकार वर्णन किया था –

सचल होकर भी अचल है, गठरी की तरह है भारी ।
नर होकर भी कठपुतली है, बंग देश की नारी ।।

इस स्थिति में परिवर्तन के लिये ही सारे विश्व में नारी-मुक्ति आन्दोलन की शुरुआत हुई है। हालाँकि राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक शिक्षा और वाणिज्य सभी क्षेत्रों में नारियों का प्रवेश हो चुका है, तो भी कहीं-न-कहीं इसमें कुछ कमी है, जिसका कारण मेरी दृष्टि में नारियों की स्वाभाविक सहनशीलता का गुण है। चाहे कारण कुछ भी हो, किन्तु नारियाँ अभी भी उपयुक्त अवसर और सुविधाओं से वंचित हैं। इस सन्दर्भ में यह याद रखना होगा कि पूर्व की तुलना में पाश्चात्य की व्यक्ति-स्वाधीनता और नारी स्वाधीनता में पर्याप्त अन्तर है। पाश्चात्य वस्तुवादी देश में भोगवाद स्वाधीनता की अन्तिम सीमा है, किन्तु पूर्व के देशों में भोगवाद बाह्यजगत की स्वाधीनता का प्रतीक है, इसीलिये उसे अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता है। वास्तव में आन्तरिक स्वाधीनता ही श्रेष्ठ और सर्वोच्च है। तभी तो स्वामी विवेकानन्दजी चाहते थे कि सीता, सावित्री, दमयन्ती के आदर्शों पर भारतीय नारियाँ प्रतिष्ठित होंगी। श्रीमाँ सारदा को मुख्य केन्द्र बनाकर विश्व की नारियाँ पुन: पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करेंगी।

इसीलिये श्रीमाँ ने कहा था, 'संयम ही मनुष्य को देवता बनाता है।' अर्थात् जो जितना अपने मन को संयमित करेगा, वह उतना ही स्वाधीन होगा और जो मनुष्य मन के अधीन रहेगा, वह पूर्णत: पराधीन होगा।

अब सबसे पहले हमें यह जानना होगा कि – १. स्वाधीनता किसे कहते हैं? २. स्वाधीनता कितने प्रकार की होती है? ३. माँ सारदा के जीवन में स्वाधीन चिन्तन और उसके क्या-क्या समाधान हैं? ४. माँ सारदा को आदर्श मानकर किस तरह पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है? आदि-आदि।

१. स्वाधीनता किसे कहते हैं? — व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का दूसरा नाम ही स्वाधीनता है। पूर्ण ज्ञान ही पूर्ण स्वाधीनता है। यह पूर्ण ज्ञान और इसके लक्षण क्या हैं? वह है – जब जीवन में कोई कमी, अभाव, भय, संशय और प्रश्न नहीं रहेगा, मन आनन्दमय रहेगा, अर्थात् अपने स्वरूपानन्द तथा पूर्णज्ञान में मग्न होगा। माँ सारदा के जीवन का अवलोकन करने पर हम यही पाते हैं। जब माँ कहती हैं – जीवन में दु:ख क्या चीज है, यह पता ही नहीं चला। ठाकुरजी ने मेरे हृदय में आनन्द का पूर्ण कलश स्थापित कर दिया है। इसी आनन्द की पूर्णता का ही दूसरा नाम स्वाधीनता है।

२. स्वाधीनता कितने प्रकार की और क्या-क्या होती है? स्वाधीनता दो प्रकार की होती है – अन्तर्जगत और बाह्यजगत की स्वाधीनता। बहिर्जगत की स्वाधीनता भी चार प्रकार की होती है, जैसे आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और शैक्षिक स्वाधीनता। अब सवाल यह उठता है कि अन्तर्जगत की स्वाधीनता किसे कहते हैं? स्वयं के स्वरूप में तो अन्तर्जगत की स्वाधीनता और भी सुन्दर है। शास्त्रों में कहा गया है –

अस्ति, भाति, प्रियम् रूपम् नाम चेनांश पंचकम् ।

आद्यम् त्रयम् ब्रह्मरूपम् जगदरूपम् ततोऽयम् ।।

इस विश्व की सभी चीजों के पाँच अंश हैं – अस्ति, भाति, प्रिय – ये तीनों ही ब्रह्म के स्वरूप हैं एवं जीव का स्वरूप है कि जीव ब्रह्म है, और कुछ नहीं है – **जीवो ब्रह्मैव नापरः** । नाम और रूप, ये दोनों इस जगत के स्वरूप हैं। पहले नाम-रूप की चर्चा करते हैं। वास्तव में बिना नाम-रूप के कोई वस्तु इस जगत में है ही नहीं। नाम होगा, तो रूप भी होगा और रूप होगा, तो नाम भी होगा। नाम-रूप से युक्त चीजें विनाशी होती हैं। इस विनाशशील वस्तुओं के प्रति आकर्षण या आसक्ति ही पराधीनता कहलाती है।

दूसरी बात, अस्ति, भाति, प्रिय इन तीनों वस्तुओं में स्वरूप या पूर्णज्ञान या पूर्ण स्वधीनता इन सबकी कोई पृथक् सत्ता नहीं है। एक ही वस्तु की केवल तीन दिशायें हैं और वही पूर्णज्ञान है। अस्ति यानी सत्ता जो हमेशा रहती है। ज्ञान से यह संसार प्रकाशित हो रहा है, इसलिए भाति है। सभी को ज्ञान प्रिय है, क्योंकि यह सभी प्रकार की अज्ञानता का विनाश करता है और इसी में आनन्द की प्राप्ति होती है। इसी आनन्द का दूसरा नाम सत्-चित्-आनन्द अर्थात् सबका स्वरूप या पूर्णज्ञान है। यह पूर्ण स्वाधीनता है। यही अन्तर्जगत की स्वाधीनता है।

अब हम बहिर्जगत की स्वाधीनता पर चर्चा करेंगे।

(क) आर्थिक स्वाधीनता – प्रत्येक व्यक्ति के जीवन-यापन के लिये आवश्यकतानुसार धन की व्यवस्था ही आर्थिक स्वाधीनता कहलाती है। आर्थिक स्वाधीनता के बिना मनुष्य का जीवन संकुचित हो जाता है, वह अभाव में कुछ भी कर बैठता है। यदि प्रशासन सबसे पहले इसी आर्थिक स्वाधीनता की व्यवस्था करे, तो अन्य स्वाधीनता स्वयं मिल सकती है।

(ख) अपने विचार अभिव्यक्त करना, मतदान करना, चुनाव करना, यह सब राजनैतिक स्वाधीनता है। इसकी योग्यता सभी नारियों में है।

(ग) बुरे संस्कारों से मुक्त समाज में स्त्री-पुरुष सभी श्रेणी के लोगों को स्वेच्छा से कार्य करने का अवसर मिलेगा, परन्तु एक के कार्य से, दूसरे की कोई क्षति नहीं होगी। ऐसे शोषणमुक्त समाज को सामाजिक स्वाधीनता कहते हैं।

(घ) जिस शिक्षा से मनुष्य स्वावलम्बी होता है और स्वयं को जान पाता है, उसे शैक्षिक स्वाधीनता कहते हैं। अर्थात् शिक्षा की पूर्णता का ही दूसरा नाम स्वाधीनता है।

३. माँ सारदा के जीवन में स्वाधीनता की भावना और समाधान – चारों ओर देखने पर हम पाते हैं कि आर्थिक स्वाधीनता कम है। विशेषकर बहुत कम क्षेत्रों में भारतवर्ष की महिलायें आर्थिक रूप से स्वाधीन हैं। यह स्थिति श्रीमाँ सारदा की नहीं थी। श्रीरामकृष्ण देव के देह-त्याग के बाद माँ कामारपुकुर में खूब कष्टमय जीवन व्यतीत करती थीं। यही देखकर उनकी माता श्यामासुंदरी देवी उन्हें जबरदस्ती अपने ग्राम जयरामबाटी ले आईं। इधर स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने गुरुभाइयों को श्रीमाँ की देखभाल का भार सौंपा। ठाकुर के ये त्यागी और गृहस्थ भक्त माँ की आर्थिक स्थिति का ध्यान रखने लगे। इसके बाद माँ को कोई आर्थिक कष्ट नहीं उठाना पड़ा। आज के नारियों को इसी आर्थिक स्वाधीनता की आवश्यकता है। माता-पिता को अपनी पुत्रियों की आर्थिक स्वाधीनता प्राप्ति की शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये। उनकी उपेक्षा बिल्कुल नहीं करें और नारी के मूल आदर्श पवित्रता और मातृत्व की पूर्णता प्राप्ति के लक्ष्य की ओर उन्हें अग्रसर होने दें। सामाजिक स्वधीनता की दिशा में माँ सारदा के व्यक्तित्व और दैवी शक्ति से प्रभावित होकर विभिन्न जाति-धर्म के लोग कैसे माँ के सान्निध्य में आये और कैसे उन लोगों का जीवन परिवर्तन हुआ, माँ का जीवन ही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

विदेशी महिला निवेदिता को पुत्री के रूप में, डाकू-अमजद को सन्तान के रूप में ग्रहण करके माँ ने तत्कालीन समाज की बेड़ियों को तोड़ा। एक बार ब्राह्मणों की पंक्तियों में अन्य निम्न जाति के व्यक्ति को बिठाकर भोजन परोसने के कारण माँ सारदा को जुर्माना भी देना पड़ा। किन्तु माँ ने इन घटनाओं से विचलित न होकर उन सामाजिक बन्धनों को छिन्न-भिन्न किया था। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था, "बाहर से देखने पर तो माँ खूब शान्त दिखती थीं, किन्तु भीतर से संहार स्वरूपिणी थीं।" सामाजिक क्षेत्र में माँ जो दृष्टान्त छोड़ गयी हैं, वह उनकी सामाजिक स्वाधीनता का मूर्त रूप है। माँ सारदा की जीवनी पढ़ने से अच्छी तरह से उनकी महिमा और सामाजिक स्वाधीनता के प्रति उनके दृष्टिकोण का अनुभव होता है। राजनैतिक स्वाधीनता के क्षेत्र में भी माँ सारदा के दृष्टिकोण उल्लेखनीय हैं। गर्भवती ग्रामीण महिला सिन्धुबाला देवी को जब स्वदेशी आन्दोलन के समय पुलिस द्वारा पकड़कर ले जाने का समाचार माँ को मिला, तब माँ सारदा संहारमूर्ति धारण

कर बोल उठीं, ''ऐसा कोई पुरुष नहीं था, जो पुलिस को दो तमाचा लगाकर उस महिला को छुड़ाकर ले आता।'' उन्होंने और भी कहा, ''अब वे अधिक दिन भारतवर्ष पर राज नहीं कर पायेंगे।'' स्वदेशी आन्दोलन से जुड़े कई युवाओं द्वारा रामकृष्ण संघ में योगदान करने की इच्छा पर महाराजों द्वारा आपत्ति करने पर माँ ने कहा था, ''जिसने ठाकुर जी का नाम लेकर संसार-त्याग किया है, वे रामकृष्ण संघ में रह सकते हैं।'' माँ सारदा ने तत्कालीन प्रशासन का तनिक भी भय किये बिना ही अपने स्वतन्त्र विचार व्यक्त करते हुए, उन युवकों को संघ में सम्मिलित कर शरण प्रदान की।

शिक्षा-क्षेत्र में स्वाधीनता के सम्बन्ध में हम पाते हैं कि श्रीमाँ सारदा ने स्वयं लक्ष्मी दीदी के हाथों वर्ण-परिचय पुस्तक मँगाकर पढ़ना प्रारम्भ किया था। माँ सारदा इतनी विद्यानुरागी थीं कि उन्होंने स्वयं निवेदिता स्कूल की स्थापना की। बागबाजार में निवास करते समय एक भक्त-महिला द्वारा अपनी पुत्री का विवाह नहीं करा पाने पर माँ सारदा के पास आकर दु:ख प्रकट किये जाने पर माँ ने कहा था, ''उसे निवेदिता स्कूल में भर्ती कर देना, वह अपने पैरों पर खड़ी हो जायेगी।'' शिक्षा के प्रति माँ का इतना आकर्षण था कि माँ ने स्वयं जयरामबाटी ग्राम में पाठशाला का शुभारम्भ किया था। इसीलिए श्रीरामकृष्ण देव उन्हें सरस्वती कहते थे।

माँ को आदर्श बनाकर कैसे पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है?

इस सन्दर्भ में श्रीरामकृष्ण देव की दो बातें विशेष उल्लेखनीय हैं – एक तो वह सारदा, सरस्वती, ज्ञानदायिनी है एवं दूसरी, इस बार उनका मातृभाव है। ठाकुरजी माँ सारदा को इसी मातृभाव के प्रचार के लिए छोड़ गये थे। वर्तमान युग की नारियों के पूर्ण ज्ञान और मातृभाव में प्रतिष्ठित होने पर ही समाज सभी स्तर पर, सभी क्षेत्रों में, न केवल स्वाधीनता अर्जित करेगा, बल्कि सर्वत्र सम्मान प्राप्त करेगा। श्रीमाँ सारदा के समान सहनशीलता, धैर्य, लज्जाशीलता, स्नेह, ममता और करुणा इत्यादि सात्त्विक गुणों की पात्रता प्राप्त करनी होगी। श्रीमाँ के विश्वव्यापी मातृत्व-गुण को अंगीकार करना होगा। आदर्श-प्रेम और कर्त्तव्यनिष्ठ होकर आत्म-विश्लेषण से जीवन की दिशा परिवर्तित की जा सकती है। आत्म-विश्लेषण की कहानी है – ''एक आचार्य जी दर्शन और अस्त्र-विद्या में दक्ष थे। अपने शिष्यों की विद्या की परीक्षा लेने के लिये एक दिन आचार्य जी अस्वस्थ होने का बहाना कर सुबह तक सोते रहे। इधर शिष्यों ने ध्यान-पूजा के समय आचार्य जी को नहीं देखा। उन्हें अस्वस्थ जानकर उनके पास जाकर प्रार्थना की, हम शिष्य क्या करें, जिससे आप स्वस्थ हो जायँ? आचार्य जी ने कहा, ''यदि तुम लोग मुझे साही का गोश्त खिला सको, तो मैं स्वस्थ हो जाऊँगा।'' सबने सहमति दी। आचार्य जी ने पुन: यह शर्त रखी, ''जब तुम साही का शिकार करोगे, तब तुममें से कोई भी साही को मारते हुए नहीं देख पाये।'' सभी शिष्य यह सोचकर शिकार पर चले गये कि घने जंगल में कौन देखता है कि साही को हमने मारा है। केवल प्रधान शिष्य को छोड़कर सभी अन्य शिष्यों ने साही का शिकार कर लाया। आचार्य जी ने उस प्रधान शिष्य, जिसने साही का शिकार नहीं किया था, उससे पूछा, तुमने साही का शिकार क्यों नहीं किया? प्रधान शिष्य ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया – आचार्य देव ! मैं भी साही का शिकार कर सकता था, परन्तु आपने कहा था कि साही का शिकार करते समय उसे कोई देख नहीं पाये। मुझे लगा शिकार करते समय किसी के नहीं देखने पर भी, मैं तो देख रहा हूँ। अत: मैं शिकार नहीं कर सका। इसे कहते हैं आत्म-विश्लेषण। इससे अन्य शिष्यों को यह चैतन्यबोध हुआ, और आत्म-विश्लेषण किस तरह किया जाता है, इसका भी ज्ञान हुआ। वस्तुत: आत्म-विश्लेषण मनुष्य को देवता बनाता है, देवता से फिर वह भगवान बन जाता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि श्रीमाँ सारदा को अपने बारे में सामान्य रूप से यह व्यावहारिक ज्ञान था कि वे जयरामबाटी के रामचन्द्र मुखर्जी की कन्या सारदा हैं और कामारपुकुर निवासी क्षुदिराम चटर्जी की छोटी बहू हैं। पारमार्थिक तौर पर उन्हें यह विशेष ज्ञान था कि वे अस्ति-भाति-प्रिय सच्चिदानन्द स्वरूपिणी विश्व जननी हैं। इस तरह प्रत्येक व्यक्ति श्रीमाँ सारदा के आत्म-विश्लेषण, कर्मकुशलता, आत्मज्ञान और मातृभाव इत्यादि को अपने-अपने ढंग से अपने जीवन में आचरण करके विश्व-नारी-समाज के स्वरूप को रूपान्तरित कर सकता है। साथ ही अपने अन्तर्जगत और बहिर्जगत की स्वाधीनता प्राप्ति के साथ-साथ पूर्णत्व की भी प्राप्ति कर सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। ○○○

श्रीगुरु–तत्त्व और जीवन में गुरु की आवश्यकता

स्वामी निरन्तरानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, जम्मू

गुरुपूर्णिमा विशेष

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवै नमः ।।

– गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु ही देवाधिदेव शिव हैं, गुरु ही साक्षात् परब्रह्म हैं, इसलिए श्रीगुरुदेव को प्रणाम करता हूँ।

गुरु की पूजा-अर्चना प्राचीन काल से ही हिन्दूधर्म में प्रचलित है। सनातन धर्म के मूल शास्त्र वेद में गुरु-भक्ति और गुरु-वन्दना का उल्लेख मिलता है। गुरुभक्ति के बिना कोई भी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता, ऐसा सबका विश्वास है।

श्रीरामकृष्ण-भावाधारा में गुरु के सम्बन्ध में अत्यन्त ऊँची और उदात्त धारणा है। अब हम उन्हीं मूल बिन्दुओं की चर्चा यहाँ करेंगे।

गुरु की आवश्यकता

धार्मिक जीवन में गुरु की आवश्यकता है। श्रीरामकृष्ण देव ने विशेष अधिकारी व्यक्ति को छोड़कर सबके लिए गुरु का प्रयोजन बताया है। उसके लिए दीर्घकाल तक निरन्तर आन्तरिक भाव से साधकों को उपयुक्त साधना की आवश्यकता है। जैसे उपयुक्त साधना की आवश्यकता होती है, वैसे ही उपयुक्त साधक भी चाहिए। साधक को दृढ़ आत्मविश्वासी होना चाहिए। दृढ़निश्चयी व्यक्ति के लिए कोई भी कठिनाई बाधा प्रतीत नहीं होगी। साधक अपने जीवन का सब कुछ – तन-मन-वाणी, ज्ञान-इच्छा-क्रिया उस परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उपयोग करता है। साधन-मार्ग में जो बाधाएँ आएँगी, उसके त्याग हेतु वह अपने हृदय के कोमलतम भावावेग को भी समूल रूप से उखाड़ फेंकने के लिए तत्पर रहता है। हृदयस्थ भावुकता के नियन्त्रण में समर्थ रहता है।

कहा जाता है शास्त्रों से हम अपने जीवन के आदर्श लक्ष्य एवं सम्भावित बाधाओं के निवारण की ठीक साधना-पद्धति प्राप्त कर सकते हैं। तब प्रश्न उठता है कि साधक के लिए गुरु के सान्निध्य की क्या आवश्यकता है? शास्त्र में विभिन्न प्रकार की साधनाओं का उल्लेख है। सबके मन की अवस्था और रुचि भिन्न-भिन्न है। इसीलिए सबके लिए एक जैसी साधना-पद्धति ठीक नहीं हो सकती। किसी विशेष व्यक्ति के लिए विशेष प्रकार की साधना-पद्धति होनी चाहिए, किन्तु उसे शास्त्रसम्मत होनी चाहिए। अवस्था और रुचि के अनुसार गुरु भिन्न-भिन्न व्यक्ति के लिए उनके अनुकूल साधना-पद्धति सिखा देते हैं और उनका आध्यात्मिक-जीवन-पथ प्रदर्शन करते हैं। इसीलिए जब किसी ने श्रीरामकृष्ण देव से पूछा, 'क्या गुरु नहीं होने से नहीं होगा?' श्रीरामकृष्ण देव उत्तर देते है – "सच्चिदानन्द ही गुरु हैं।" **गुरु सही रास्ता दिखा देते हैं।** इस प्रसंग में स्वामी ब्रह्मानन्दजी विनोद करते हुए कहते हैं – 'चोरी करना सीखना हो, तो भी गुरु की आवश्यकता पड़ती है, तो क्या ब्रह्मविद्या सीखने के लिये गुरु की आवश्यकता नहीं होगी?"

श्रीरामकृष्ण देव साधकों को गुरु के निर्देशानुसार साधना करने का परामर्श देते थे। वे कहते थे – "सभी की मुक्ति होगी, पर गुरु के उपदेशानुसार चलना होगा, गुरु ही सब करते हैं, पर थोड़ी साधना करा लेते हैं।

कृपासिन्धु श्रीगुरु प्रेम और करुणावश शिष्य को दीक्षा और विशेष साधना-पद्धति की शिक्षा देते हैं। दीक्षा से ही साधक का पूर्णतः सुसंयत, व्यवस्थित आध्यात्मिक जीवन आरम्भ होता है। शास्त्र में गुरु-प्रयोजन का उल्लेख है। उपनिषद कहती है, "आचार्यवान् पुरुषो वेद", वे ही तत्त्व को जान सकते हैं, जो गुरु से उपदिष्ट हैं। एक अन्य उपनिषद में है –

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।।

– उसी महात्मा के हृदय में शास्त्र-तत्त्व प्रकाशित होता है, जिसमें उत्तम देवभक्ति और दृढ़ गुरुभक्ति होती है।

आचार्य शंकर एक कदम आगे बढ़कर कहते हैं – गुरुभक्तिहीन शास्त्रज्ञ पंडित की विद्वता व्यर्थ है। ऐसी विद्वता मूर्ख की मूर्खता से तुलनीय है – "असम्प्रदायवित् सर्वशास्त्रविदपि मूर्खवत् एव उपेक्षणीयः।"

वास्तविक गुरु भगवान स्वयं हैं

सच्चे गुरु स्वयं भगवान हैं, इसीलिए एक और अद्वितीय हैं। श्रीभगवान जिस शक्ति की सहायता से मनुष्यों का अज्ञान या माया रूपी बन्धन का नाश करते हैं,

उसी अज्ञाननाशक शक्ति को गुरु या गुरुशक्ति कहते हैं। यह शक्ति सम्पूर्ण रूप से ईश्वर की ही है।

श्रीरामकृष्ण ने इसी भाव को कई बार विभिन्न प्रकार से कहा है, "सच्चिदानन्द ही गुरु हैं," "गुरु एक सच्चिदानन्द हैं, वे ही शिक्षा देंगे।" ब्राह्मनेता विजयकृष्ण गोस्वामी ठाकुर श्रीरामकृष्ण से प्रश्न करते हैं, 'ब्राह्मसमाज में जो उपदेश आदि होता है, क्या उससे लोगों की मुक्ति नहीं होती? ठाकुर ने उत्तर दिया था, "मनुष्यों की क्या क्षमता है कि वे दूसरों को संसार-बन्धन से मुक्त कर सकें, जिनकी यह भुवनमोहिनी माया है, वे ही इस माया से मुक्त कर सकते हैं। सच्चिदानन्द गुरु को छोड़कर दूसरा कोई पथ नहीं है।

शास्त्र का अनुशासन – ईश्वर ही इष्ट हैं, ईश्वर ही गुरु हैं। श्रीगुरु-गीता में हैं – 'गुरुर्ब्रह्मा गुरु विष्णु: गुरुर्देवो महेश्वर:, उसी प्रकार पतंजलि के योगसूत्र में है – **'स: पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्**।"

ठाकुर कहते हैं – ईश्वर लोकशिक्षा प्रदान करने के लिए युग-युग में स्वयं गुरु के रूप में अवतार लेते हैं। परन्तु ये सच्चिदानन्द गुरु बहुत कालों के बाद आते हैं। ठाकुर कहते थे, 'मनुष्य गुरु नहीं हो सकता।' इससे तो गुरु का अभाव होगा। तब समस्या खड़ी होगी।

इस समस्या का समाधान भी ठाकुर ने दिया है – 'ईश्वर की अपार गुरुशक्ति किसी-किसी शुद्ध आधार में अवतरित होती है, वे महापुरुष ही मानव-गुरु कहे जाते हैं। ध्यान रखें, मानव-गुरु भगवान के हाथों के विशेष यन्त्र होते हैं, जिनके द्वारा स्वयं भगवान संसार में जन-साधारण को गुरुशक्ति वितरण करते हैं।

श्रीरामकृष्ण-चरणाश्रित भक्तों का दृढ़ विश्वास है, श्रीरामकृष्ण उनके गुरु और सद्गुरु हैं। जिनसे वे लोग दीक्षा-शिक्षारूपी कृपा प्राप्त करते हैं, वे उनके मानव-गुरु हैं। मानव-गुरु सबके विशेष श्रद्धा-पूजा या विशेष भक्ति के पात्र होते हैं। प्रत्येक गुरु में वही एक गुरुशक्ति है, वही श्रीरामकृष्ण से प्रवाहित हो रही है, इसीलिए मानव-गुरुओं में कोई छोटा-बड़ा नहीं है और कोई ऐसा विचार करता भी नहीं है। 'ये बड़े और वे छोटे हैं', ऐसा विचार अज्ञानोद्भूत, धृष्टता और संकीर्णता का परिचायक है। इसी समस्या से स्वामी सत्प्रकाशानन्द जी का मन ठीक नहीं था। उनकी धारणा थी, श्रीमाँ सबसे बड़ी हैं, इसीलिए उनसे ही दीक्षा लेनी चाहिए। स्वामी ब्रह्मानन्दजी से दीक्षा लेने में उनका मन हिचकिचा रहा था। एकदिन बेलूड़ मठ जाकर उन्होंने देखा कि स्वामी शिवानन्द जी गंगा के तट पर टहल रहें हैं। सत्प्रकाशानन्द जी ने उनको प्रणाम कर कहा, "महाराज कोई-कोई श्रीमाँ से और कोई ब्रह्मानन्दजी से दीक्षा लेते हैं। क्या इसमें कोई भेद है? शिवानन्दजी ने उत्तर दिया – मैं तो इसमें कोई भेद नहीं देखता हूँ। एक ही गंगा-जल मानो दो नलों से आ रहा है। एक ही ठाकुर की कृपा श्रीमाँ और ब्रह्मानन्दजी के द्वारा आ रही है। देखो, दीक्षा लेते हैं, यह कहना ठीक नहीं, दीक्षा पाते हैं।"[१] इस सन्दर्भ में वे श्रीरामकृष्ण देव का एक उदाहरण देते हैं – वर्षा के समय छत में पानी जमा होता है। वह एक ही जल विभिन्न नल से नीचे गिरता है। नलों में भिन्न-भिन्न प्राणियों के मुख – किसी में सिंह, किसी में बाघ, किसी में गाय के लगाए गए हैं। यद्यपि गाय, सिंह या बाघ के मुख से जल निकलता हम देखते हैं, किन्तु हम जानते हैं कि एक ही छत का जल विभिन्न प्राणियों के मुख से आ रहा है। ऐसे ही एक अद्वितीय ईश्वर की गुरुशक्ति सभी मानव-गुरुओं से लोगों में प्रवाहित होकर मानवों को मुक्तिपथ पर ले जा रही है।

श्रीरामकृष्ण के भक्त संघगुरु के रूप में संघाध्यक्ष महाराज में अपार श्रद्धा करते हैं। स्वामीजी ने स्वयं ऐसा कहा है। एक दिन स्वामीजी ने बेलूड़ मठ में अपने शिष्य स्वामी अचलानन्द को कहीं दूर जाते देख उन्हें बुलाकर कहा, 'जा कुछ फूल तोड़कर ले आ।' स्वामी अचलानन्द दौड़कर फूल तोड़ ले आए। स्वामीजी ने उनसे कहा, 'आ अब मेरी पूजा कर।' गुरु कृपाकर शिष्य की पूजा ग्रहण कर रहे हैं, ऐसा देख स्वामी अचलानन्दजी रोने लगे। गुरु पूजा के बाद स्वामीजी ने पुन: आदेश दिया – "जा, एक बार फिर फूल तोड़कर ले आ, उस समय स्वामीजी के पास संघाध्यक्ष ब्रह्मानन्दजी बैठे हुए थे। अचलानन्दजी के फूल लाने के बाद स्वामीजी ने संघाध्यक्ष की पूजा करने का आदेश दिया। गुरु और संघाध्यक्ष को एक समझना। सदा अध्यक्ष की आज्ञा मानना।"[२]

रामकृष्ण संघ के गुरुगण मैं गुरु हूँ, ऐसा अहंकार नहीं रखते। स्वामी शिवानन्द ने एक बार दूसरे लोगों से कहा था – 'देखो भाई, मैं दीक्षा देता हूँ, ऐसा मेरा भाव नहीं है। वे (ठाकुर) भक्तों के हृदय में प्रेरणा देकर यहाँ ले आते हैं। वे ही मेरे भीतर बैठकर मुझसे जो बुलवाते हैं, मैं केवल वही बोलता हूँ। ठाकुर ही मेरी अन्तरात्मा हैं।"[३]

सामान्य गुरु की सीमा और ईश्वर के अवतार या

सद्‌गुरु की अपार कृपाशक्ति की बातें मानव-गुरु शिष्यों को ठीक से बताते हैं। छठवें संघगुरु स्वामी विरजानन्दजी ने बड़े ही सुन्दर ढंग से इसे व्यक्त किया है –"कोई किसी के पाप का भार नहीं ले सकता, गुरु भी नहीं। मन्त्र-दीक्षा देकर गुरु तुम्हारे समस्त पापों का भार अपने कन्धे पर ले लेते हैं, ऐसा सोचना बड़ा भ्रम है। एकमात्र ईश्वरावतार ही भार ले सकते हैं और लेते भी हैं। क्योंकि वे अहैतुक कृपासिन्धु हैं और वे पापी-तापी लोगों के उद्धार हेतु ही आते हैं।"[४]

गुरु की श्रद्धा-भक्ति करना बहुत अच्छा है, उसकी आवश्यकता भी है, किन्तु अपने गुरु को केन्द्र बनाकर संकीर्ण बुद्धि की सहायता से छोटा सम्प्रदाय बनाना किसी के लिए भी मंगलकारी नहीं हो सकता। दशम संघाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्द जी ने इसे स्पष्ट करते हुए अपने एक शिष्य को पत्र में लिखा था – "विभिन्न गुरुओं का जन्मदिन मात्र उनके अपने शिष्यों द्वारा ही मनाना बुद्धिहीनता का द्योतक है। क्योंकि ऐसा करने से विभिन्न गुरुओं के शिष्यों में संकीर्ण भेद-भाव उत्पन्न होता है। ... हमारे लिए ठाकुर ही गुरु, इष्ट सब कुछ हैं। वे ही हमारे 'गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् हैं।"[५]

साधना चाहिए

साधक की सफलता मुख्यतः उसके स्वयं पर निर्भर करती है। श्रीरामकृष्ण के सुकंठ से गाना सुना जाता था, 'आमरा जानि जे मन-तोर, दिलाम तोरे सेई मन्तोर, एखन मन तोर।" प्रबल विश्वास और व्याकुलता से ही साधक ईश्वर-दर्शन करने में समर्थ होता है। गुरु प्रदत्त साधना-पद्धति का नियमित हार्दिकता से अनुसरण करने की आवश्यकता है।

श्रीरामकृष्ण देव गुरु में मानव-भाव रखने का निषेध किया था। वे कहते हैं – "उन्हें (गुरु को) साक्षात् ईश्वर ही समझना चाहिए, तभी तो मन्त्र में विश्वास होगा।" मानव में दोष-गुण, सीमा तो रहती ही है, किन्तु शिष्य गुरुभक्ति के कारण गुरु में दोष नहीं देख पाते। इसीलिए श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, "यद्यपि मेरे गुरु मधुशाला जाते हैं, तथापि मेरे गुरु नित्यानन्द राय हैं।"

उन्होंने कहा था, "गुरुवाक्य में विश्वास करो। विश्वास होने से ही हुआ, विश्वास से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। किंवदन्ती है –

'गुरु से चेला जब्बर चार युग परमान।
रामचन्द्र ने सेतु बंधा टपक गया हनुमान।।"

इस कहानी को कई बार सुनाकर ठाकुर बड़ा आनन्दित होते थे। भक्त भी उनके साथ आनन्द का बाजार लगाते थे। रसिक चूड़ामणि श्रीठाकुर कहते थे – "श्रीरामचन्द्र जो साक्षात् नारायण थे, उन्हें लंका पहुँचने में सेतु बाँधना पड़ा। किन्तु हनुमान रामनाम पर विश्वासकर छलांग लगाकर समुद्र को पार कर गए। उन्हें किसी सेतु की आवश्यकता नहीं पड़ी।" वे एक सरस कहानी सुनाते थे – "सरल विश्वास से क्या नहीं होता। गुरुपुत्र के अन्नप्राशन के समय शिष्य अपने सामर्थ्यानुसार उत्सव का आयोजन कर रहे हैं। एक गरीब विधवा भी शिष्या थी। उसकी एक गाय थी। वह एक लोटा दूध लेकर आयी। जबकि गुरु ने सोचा था कि दूध-दही का पूरा भार यही महिला वहन करेगी। क्रोधित होकर उसके लाए दूध को फेंकते हुए गुरु ने कहा – 'तुम जल में डूबकर मर क्यों न गई?' महिला इसे गुरु की आज्ञा समझकर नदी में डूबने गई। तब नारायण ने दर्शन दिया और प्रसन्न होकर कहा, 'इस बर्तन में दही है, इसमें जितना ही निकालोगी, उतना ही पुनः भर जाएगा, गुरु भी सन्तुष्ट हो जाएँगे। उस पात्र को पाकर गुरु आश्चर्यचकित हो गए। वे सारी बातें सुनकर नदी के किनारे जाकर महिला से बोले, 'यदि तुम नारायण का दर्शन मुझे नहीं कराओगी, तो मैं इसी जल में डूबकर प्राण त्याग दूँगा।' नारायण ने दर्शन दिया, पर गुरु उन्हें देख न सके। तब महिला ने कहा, 'यदि आपने गुरुदेव को दर्शन नहीं दिया और उनकी मृत्यु हो गई, तो मैं भी शरीर त्याग दूँगी। तब नारायण ने एकबार गुरु को भी दर्शन दिया।"

इस कहानी को सुनाने के बाद हम आश्चर्यपूर्वक श्रीरामकृष्ण के विचार को देखते हैं – "देखो, गुरुभक्ति होने से स्वयं को भी दर्शन हुए और गुरु को भी।"

साधना में प्रबल उत्साह चाहिए। श्रीरामकृष्ण कहते थे, "पर्याप्त अध्यवसाय चाहिए, तब साधना होती है। दृढ़ प्रतिज्ञा चाहिए।" वे कहते थे, "बिना ईश्वर-प्रेम के यज्ञ-याग करके क्या तुम्हें जाना जा सकता है।" किसी भक्त का ईश्वर-प्रेम कम होने पर ठाकुर उससे कहते, 'इस जन्म में न हो, अगले जन्म में पाऊँगा, यह कौन-सी बात है? इस प्रकार की मन्द भक्ति नहीं करनी चाहिए। उनकी कृपा से इसी जन्म में प्राप्त करूँगा, अभी प्राप्त करूँगा, मन में ऐसा दृढ़ विश्वास रखना चाहिए, ऐसा नहीं होने से क्या यह सम्भव है।"[६]

विचार या विवेक से ही हमें विषयों से वैराग्य होता है। ठाकुर ने वचनामृत के लेखक मास्टर महाशय को दूसरे दिन ही सिखाया था – 'वस्तु विचार'। उन्होंने कहा था – 'साथ-ही-साथ विचार करने की बड़ी आवश्यकता है। कामिनी–कांचन अनित्य है, ईश्वर ही एकमात्र वस्तु हैं। रुपये से क्या होता है? चावल होता है, दाल होती है, कपड़े मिलते हैं, रहने का स्थान होता है, बस यहीं तक। ईश्वर-प्राप्ति नहीं होती। अत: रुपया जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता, – इसी को विचार कहते हैं।''

श्रीरामकृष्ण के मुख से प्राय: ही इन साधना-मार्गों के बारे में सुना जाता था, ''बीच-बीच में साधु-संग, और निर्जनवास कर ईश्वर-चिन्तन करना चाहिए और विचार करना चाहिए। उनके सामने प्रार्थना करनी चाहिए, मुझे भक्ति, विश्वास दीजिए। अर्थात् १. साधु-संग, २. निर्जनवास, ३. विचार एवं ४. प्रार्थना।

श्रीरामकृष्ण और मास्टर महाशय की दूसरी भेंट में विचार, जो ज्ञानमार्ग का मूल साधन है के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण ने केवल कहा ही नहीं, बल्कि उन्होंने अन्य तीन योगों के मुख्य साधनाओं को भी बताया था – ''ईश्वर का नाम-गुणगान सर्वदा करना चाहिए। ध्यान करना चाहिए मन में, कोने में और वन में। सब काम करना, किन्तु मन ईश्वर में रखना।'' श्रीरामकृष्ण के भक्तों में हम देखते हैं कि वे पुरुषार्थ करते हुए ठाकुर के उपदेशानुसार चतुर्योग-समन्वित साधना करते हैं। अन्त में ईश्वर-कृपा से भक्त अपने प्रियतम में तल्लीन हो जाता है। श्रीगुरु द्वारा निर्दिष्ट साधना की सहायता से और उपर्युक्त सहज-सरल और स्वाभाविक नवयुगधर्म में परिशुद्ध, पवित्र होकर युगावतार की कृपा से निष्ठावान साधक अनायास ही भगवत-दर्शन करके जीवन को सार्थक कर लेते है। शक्ति और शान्ति से, आनन्द और प्रेम से जीवन परिपूर्ण हो जाता है।

सन्दर्भ – **१**. स्वामी ब्रह्मानन्द की स्मृति कथा – स्वामी चेतनानन्द, १४१०, पृ. १०४ **२**. स्वामीजीर पदप्रान्ते – स्वामी अब्जजानन्द, १९९१, पृ. ३३० **३**. श्रीरामकृष्ण-भक्तमालिका – स्वामी गम्भीरानन्द, प्रथम भाग, १४०४, पृ. २९० **४**. परमार्थ प्रसंग – स्वामी विरजानन्द, १३९३, पृ. २५ **५**. स्वामी वीरेश्वरानन्द, रामकृष्ठ मठ, बेलुड़ मठ, प्रथम भाग, १४२०, पृ. ३८, **६**. श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग – स्वामी सारदानन्द, गुरुभाव पूर्वार्ध, पृ. ४८

(निबन्ध प्रस्तुति – स्वामी देवप्रभानन्द)

ऋण चुकाना अभी शेष है

श्याम कुमार पाढ़ी, संचालक युवा.म.मं.,चाँपा

कॉलोनी की गलियों में घूमता हुआ मन्नू लगभग आवारा लड़कों का मुखिया बन गया था। कभी पेड़, तो कभी दीवारों पर चढ़कर उधम मचाना, उसकी दिनचर्या के अंग बन गये थे। उसका संस्कार ठीक नहीं था, अत: ये सब बातें उसमें स्वाभाविक हो गयी थीं। किन्तु पढ़ने में वह अच्छा था। घर में कोई विशेष व्यवसाय नहीं था। हाँ, परिवार कौरवों का दल था। उसके भाई लोग भी पढ़ाई को विशेष महत्त्व न देकर छोटे-छोटे व्यवसाय से कुछ कमाने लगे थे, फिर भी भरण-पोषण नहीं हो पाता। जिसे मिल जाता, वही खाना पहले चट कर जाता, बाद वाले की कौन सोचे ! ऐसा उसके घर का वातावरण था।

पढ़ाई में अच्छे अंक लाने के कारण उसे छात्रवृत्ति मिलती थी। इससे उसकी पढ़ाई का खर्च निकल जाता था। पढ़ाई में उत्कृष्ट होने से शेखचिल्ली की तरह हवा-महल बनाने में वह पारंगत था और बड़े लोगों से परिचय बनाने में निपुण था। इन्हीं गुणों के साथ मन्नू अपने साथी के साथ 'विवेकानन्द पाठचक्र' में आया। इससे 'सर' के सम्पर्क में आ गया। वह पाठचक्र में आता, वहाँ के सारे कार्यों में भाग लेता, किन्तु अपनी चालाकी पूर्ण शैतानी नहीं छोड़ता। बन्दर की तरह नटखट आदतों के कारण उसे 'सर' से डाँट भी पड़ती। किन्तु वह जान गया था कि 'सर' डॉटते हैं, किन्तु बहुत प्यार भी करते हैं और उन सबके भविष्य के लिए सोचते हैं। इतना तो पिताजी भी नहीं करते। इसलिये वह पाठचक्र को छोड़ भी नहीं पाता था। संस्था की गतिविधियों के साथ आश्रम तथा संन्यासियों का सान्निध्य उसे अच्छा लगा। स्वामी विवेकानन्द, श्रीरामकृष्ण परमहंस, माँ सारदा देवी के दिव्य विचारों से अवगत होकर उसे जीवन की सार्थकता समझ में आयी। अपनी पढ़ाई में विशेष उन्नति कर वह विशिष्ट तकनीकी पढ़ाई हेतु बाहर गया। वहीं किसी निजी कम्पनी में कार्यकारी अधिकारी के पद पर उच्च वेतन पर कार्य करने लगा। उसके पुराने दिन बदल चुके थे। महानगरीय ठाठ-बाट के वातावरण ने वहीं रहने और अपने लोगों को भूलने को प्रेरित करने लगा। किन्तु पाठचक्र एवं आश्रम के संस्कार उसके मन पर अमिट थे, वे उसे रोकते रहे। उसे लगा कि अभी ऋण पूरा नहीं हुआ है। अत: वह अपने उसी पुराने स्थान पर आकर अपने अन्य भाइयों के विकास और सुसंस्कार में सहायता करने लगा। ○○○

विवेकानन्द का समाजवाद

कनक तिवारी

वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

१. समाजवाद मुख्यत: कार्ल मार्क्स के कारण उन्नीसवीं सदी से वैचारिक वाद-विवाद का केन्द्र ही नहीं, बल्कि शिखर पर रहा है। बीसवीं सदी समाजवाद समर्थक लड़ाई की रही है। इन दो सदियों में आधे से अधिक जगत समाजवाद के नारे को सार्थक करने के प्रयास में विफल रहा है। विवेकानन्द पहले समाजचेता सुधारक थे, जिन्होंने अपने को समाजवादी कहा। उन्होंने यह जोड़ा कि समाजवाद अकेला नहीं, सबसे अच्छा विकल्प है। सामाजिक स्तर पर वितरण की दृष्टि से आधी रोटी मिलना एक रोटी नहीं मिलने से अच्छा है। यूरोप प्रवास में विवेकानन्द का प्रिंस पीटर क्रोपाटकिन से साम्यवादी अवधारणाओं को लेकर विस्तृत और सघन विचार-विमर्श हुआ था। रूसी क्रांति के १९१७ में सफल होने के बहुत पहले विवेकानन्द ने भविष्यवाणी की थी कि पहला साम्यवादी शासन रूस और फिर चीन में स्थापित होगा। भारत में विवेकानन्द के समाजवाद का अर्थ था कि दलितों और गरीबों को शिक्षा तथा अन्य संसाधनों से जोड़कर उनकी सांस्कृतिक अभिवृद्धि की जाए। फिर वे स्वयं ही अपना विकास कर लेंगे। विवेकानन्द ने भविष्यवाणी की थी कि भारत में शूद्रों अर्थात् दलितों, वंचितों और पिछड़ों का राज्य होगा।

भारतीय राजनीतिक विचारकों के बहुत पहले विवेकानन्द ने स्वयं को समाजवादी घोषित किया था। समाजवाद के प्रति प्रतिबद्धताओं के साथ-साथ उन्होंने अपनी आशंकाओं और समाजवाद की व्यावहारिक सीमाओं को भी रेखांकित किया था। सम्भवत: सबसे पहले १ नवम्बर, १९८६ को मेरी हेल को लिखे अपने पत्र में विवेकानन्द ने कहा था – I am a socialist not because I think it is perfect system, but half a loaf is better than no bread.

विवेकानन्द ने समाजवाद को चुस्तदुरुस्त प्रणाली प्रमाणित करने के बदले उसकी सम्भावनाओं के सम्बन्ध में शुभ संकेत भी किया था। वे जानते थे कि पश्चिम में विकसित होनेवाला राजनीतिक समाजवाद उनकी कल्पना के अनुकूल नहीं है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन प्रकृति के राजनीतिक समाजवाद के प्रति उनमें दुराग्रह भी नहीं था। इसलिये वे सेवाभावी राजनीति को वेदान्त दर्शन की नींव पर विकसित करने के पक्षधर बने। उन्होंने देखा था कि समाजवाद स्थापित करने की आड़ में राज्यों में पार्टी तन्त्र जन-आकांक्षाओं को नियन्त्रित करने का नया उपकरण बन गया है। जिन देशों में समाजवाद पनप रहा था, वहाँ भी एक सीमित वर्ग समाजवाद का नकाब पहनकर जनता को भीड़ समझकर उसे नियन्त्रित करने की योजनाएँ बनाने में व्यस्त था। ऐसा प्रत्यक्ष तथा सम्भावित समाजवाद विवेकानन्द की अवधारणाओं के अनुकूल नहीं था। उन्होंने यहाँ तक अनुभव किया था कि समाजवाद का सामूहिक नारा लगाने के बाद भी अलग-अलग देशों में समाजवाद की भिन्न प्रकार की प्रजातियाँ फलने-फूलने लगी थीं। आर्थिक और राजनीतिक क्रान्ति की नींव में मनुष्य में अन्तर्निहित नैतिक शक्तियों की भूमिका को नकार देना, उसका मूल कारण था। समाजवाद को लाने की अलग-अलग शैलियाँ समानान्तर सड़कों की तरह हो गईं थीं। उन पर चलने से समानान्तर लेकिन अलग-अलग प्रकार के लक्ष्य प्राप्त हो सकते थे।

वास्तव में विवेकानन्द के समाजवाद को स्वीकृत या प्रचलित राजनीतिक अर्थ का किताबी समाजवाद नहीं कहा जा सकता। उसे 'वेदान्ती समाजवाद' कहना अधिक समीचीन होगा। विवेकानन्द ने वेदान्त का गहन अध्ययन, अध्यापन और अन्वेषण किया। उन्होंने कई बार समाजवाद शब्द का उल्लेख भी किया, लेकिन वेदान्ती समाजवाद जैसा नया प्रयोग करने का कोई दावा नहीं किया। यह सामान्य धारणा है कि विवेकानन्द को सक्रिय राजनीति में आने में रुचि नहीं थी। विवेकानन्द-साहित्य को अंगरेजी-शासन द्वारा प्रतिबन्धित भी किया गया। उसे जब्त भी किया गया। फिर भी विवेकानन्द ने अपने को राजनीतिक गतिविधियों के अतिरिक्त पाश्चात्य राजनीतिक और बौद्धिक अवधारणाओं से मुक्त रखा। उनका दृढ़ विश्वास था कि केवल या प्रारम्भ में राजनीति के द्वारा मनुष्य की मुक्ति तथा सामाजिक जीवन में समता लाने का दावा करना सम्भव नहीं है। विवेकानन्द राजनीति के द्वारा

सामाजिक समानता, एकता और विकास के पश्चिमी सिद्धान्तों की असफलता से प्रत्यक्ष रूप से परिचित हुए थे। केलीफोर्निया के 'शेक्सपियर क्लब ऑफ पेसेडेना' में २७ जनवरी, १९०० के अपने व्याख्यान में उन्होंने कहा था '"In England or in America, if your want to preach religion to them, you will have to work through political methods ... if your want to speak of politics in India, you must speak through the language of religion."

इसी बात को आगे बढ़ाते हुए विक्टोरिया हॉल मद्रास के अपने व्याख्यान 'मेरी क्रान्तिकारी योजना' में विवेकानन्द ने पुन: कहा था, "यदि तुम धर्म को फेंककर राजनीति, समाज-नीति अथवा अन्य किसी दूसरी नीति को अपनी जीवन-शक्ति का केन्द्र बनाने में सफल हो जाओ, तो उसका फल यह होगा कि तुम्हारा अस्तित्व तक नहीं रहेगा। यदि तुम इससे बचना चाहो, तो अपनी जीवन-शक्तिरूपी धर्म के भीतर से ही तुम्हें अपने सारे कार्य करने होंगे।" इसी भाषण में उन्होंने कहा था कि भारत को समाजवादी अथवा राजनीतिक विचारों से प्लावित करने के पहले आवश्यक है कि उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाए। (विवेकानन्द साहित्य–५, पृष्ठ ११५-११६)। इसी तरह लन्दन में १८९६ में दिए गए साक्षात्कार में विवेकानन्द ने स्पष्ट कहा था, "religion is of deeper importance than politics, since it goes to the root, and deals with the essentials of conduct."

अपने प्राच्य तथा पाश्चात्य लेख में विवेकानन्द ने पारदर्शी ढंग से कहा था – "I have seen your Parliament, your Senate, your vote, majority, ballot, it is the same thing everywhere ... The powerful men in every country are moving society whatever way they like, and the rest are only a flock of sheep."

विवेकानन्द ने समाजवाद की तात्त्विक व्याख्याएँ करने तथा समसामयिक राजनीतिक प्रश्नों से जूझने से परहेज की। उन्होंने नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना के द्वारा समाजवादी स्थापना का लगभग नया प्रयोग किया। उन्होंने समाजवाद नामक राजनीतिक सिद्धान्त का इसलिए उल्लेख किया क्योंकि उन्हें इस राजनीतिक सिद्धान्त में गरीबों के विकास का संकल्प निहित दिखाई दिया। विवेकानन्द समकालीन नवोदित भारतीयों में सबसे अधिक प्रबुद्ध लोगों में रहे हैं। लगभग साढ़े चार वर्षों के अमेरिका और यूरोप के प्रवास के कारण यह अनुमान करना विश्वसनीय होगा कि विवेकानन्द को १८४८ में मार्क्स और एंजेल्स की रचना 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो', १८५० के उसके 'हेलने मेकफारलेन' के अंगरेजी अनुवाद और १८७१ के उसके 'अमेरिकी संस्करण' १८८८ का अंगरेजी में सैम्युअल मूर कृत अनुवाद को देखने-परखने का अवसर मिला होगा। अमेरिका में १८९३ की धर्म-संसद के पहले अमेरिका की सोशलिस्ट लेबर पार्टी के नेतृत्व में श्रमिकों के कई आन्दोलन तथा प्रदर्शन हुए थे। १८९४ में भी पूर्व राष्ट्रपति बेंजामिन हैरिसन के नेतृत्व में बीस हजार बेरोजगारों ने वाशिंग्टन में प्रभावशाली प्रदर्शन किया था। यही नहीं, अमेरिका जाने के पहले विवेकानन्द ने बंकिमचन्द्र चटर्जी की कृति 'साम्य' को भी सम्भवत: पढ़ा होगा। इस सम्भावित पृष्ठभूमि के कारण विवेकानन्द की समाजवाद सम्बन्धी समझ सभी संसूचित प्रभावों के सन्दर्भ में विकसित हुई जान पड़ती है। उन्होंने यूरोपीय या अमेरिकी किसी बुद्धिजीवी के अनुयायी या आलोचक होने का इतिहास को प्रमाण नहीं दिया। भारत में सम्भावित शूद्रराज के भविष्य की विवेकानन्द की परिकल्पना कार्ल मार्क्स के सर्वहारा की तानाशाही के सिद्धान्त से उपजा हुआ विचार नहीं था। अन्यथा उन्होंने इसे स्वीकार किया होता। उनका वह समानान्तर और मौलिक विचार है।

विवेकानन्द नि:सन्देह पूँजीवाद और समाज में धनशक्ति के प्रयोग के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने बाद में भारतीय संविधान में वर्णित सामाजिक न्याय और समानता के आदर्शों का अनायास ही पूर्व प्रचार किया। वे किसी भी वर्ग के धनी लोगों के विशेष सुविधाएं दिए जाने के विरुद्ध थे। उनका आकलन था कि वर्तमान भारत में लोगों की दयनीय दशा का एक कारण भारतीय संस्कृति के मूल आदर्शों का व्यावहारिक निषेध है। वह आदर्श अद्वैत ही है। पाश्चात्य समाजवाद का सिद्धान्त प्रकारान्तर से अद्वैत के आदर्शों की आंशिक अनुकृति की तरह विवेकानन्द को दिखाई दिया था। उनके अनुसार यदि ऐसे राजनीतिक समाजवादी सिद्धान्तों में वैश्विक एकता का बीजारोपण किया जाय, तो वह अद्वैत के सिद्धान्तों के समानान्तर होने से स्थायी प्रकृति का सामाजिक उपचार बनाया जा सकता है। विवेकानन्द गरीबों और दलितों की दुर्दशा देखकर

बहुत व्यथित रहते थे। उस दुर्दशा के निवारण हेतु उनके आह्वान में एक राजनीतिक नायक की भूमिका देखने को मिलती है। उन्होंने साफ कहा था, केवल राजनीतिक क्रान्ति से आर्थिक, सामाजिक और मानवीय असमानता दूर नहीं की जा सकती। ऐसे उपेक्षित वर्ग के प्रति दया दिखाने के भी विवेकानन्द विरुद्ध थे। उन्होंने विद्रोही स्वर में एक सज्जन से पूछा, 'गरीबों पर दया करने की आपकी क्या क्षमता है? पहले उनसे उनका धन, जीवन स्तर, यश और समाजिक स्वीकृति छीनकर फिर तुम्हीं ये सब अधिकार और जीवन मूल्य उन्हें भिक्षा के रूप में दो – यह कौन-सा नैतिक कार्य है?' उन्होंने कहा कि राजनीतिक हिंसा अथवा दिखाऊ दानशीलता से सामाजिक परिवर्तन तथा जनता के समाज में वैधानिक स्तर की स्थापना के स्वप्न नहीं देखे जा सकते। इसके लिये एक वैश्विक दृष्टिकोण की जरूरत है, बल्कि विश्व मानवता के लिये एक नया जीवन-दर्शन चाहिए। भारत का अद्वैत सिद्धान्त पूरे विश्व की सामाजिक एकता और किसी परम सत्ता से तादात्म्य स्थापित करने हेतु सबसे प्रामाणिक व्यवस्था-प्रमाणपत्र है।

अपने अद्वैत सिद्धान्तों की प्रतिबद्धता के बावजूद विवेकानन्द तत्कालीन आर्थिक संरचना और सामाजिक ढाँचे में लोगों के उत्थान के लिये सम्पूर्ण परिवर्तन के पक्षधर थे। विवेकानन्द ने यूरोप और अमेरिका के समाजवादी आन्दोलनों को अवश्य ही नजदीक से देखा-परखा था। इंग्लैंड के चार्टिस्ट आन्दोलन, फेबियन आन्दोलन और अमेरीकी समाजवादी आन्दोलनों का एक जिज्ञासु आलोचक की तरह अनुशीलन किया था। उन्होंने यूरो-अमेरिकी आन्दोलनों सहित अमेरिका के 'वार ऑफ इंडिपेंडेंस' और 'फ्रांस की राज्य क्रान्ति' की तात्त्विक मीमांसा भी की थी। उनका मत था कि अमेरिकी स्वतन्त्रता का युद्ध उपलब्धि से कहीं ज्यादा एक वादा बनकर इतिहास में जीवित रह गया है। भावुक विवेकानन्द ने 'अमेरिका की आजादी' शीर्षक से ४ जुलाई, १८९८ को एक कविता भी लिखी थी। इस कविता की अन्तिम दो पंक्तियों में विवेकानन्द ने मनुष्य के भविष्य की अद्वैत परिकल्पना गूँथी है – "Move on, O Lord, in thy resistless path! Till thy high noon o'erspreads the world." लेकिन आश्चर्यजनक है कि फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने विवेकानन्द को उस तरह अनुप्राणित नहीं किया था। विवेकानन्द ने फ्रांस की राज्यक्रन्ति के बाद की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए 'प्राच्य और पाश्चात्य' शीर्षक के निबन्ध में यह कटाक्ष भी किया 'सारा यूरोप उस वेग को नहीं सह सका। फ्रांसीसी जाति के आगे सैन्यों के कन्धों पर खड़े होकर एक वीर ने महासिंहनाद किया। उसकी अंगुली को देखते ही पृथ्वी काँपने लगी। वह था नेपोलियन बोनापार्ट।... स्वाधीनता, समानता और बन्धुत्व को बन्दूक की नली से, तलवार की धार से यूरोप की अस्थि-मज्जा में प्रवेश करा दिया गया। फ्रांस की विजय हुई। इसके बाद कांग्रेस को दृढ़बद्ध और सावयव बनाने के लिये नेपोलियन बादशाह बना। इसके बाद उसका कार्य समाप्त हुआ।'' (विवेकानन्द साहित्य, दशम खंड, पृष्ठ ९९) विवेकानन्द के अनुसार इसी तरह इंग्लैंड में भी चार्टिज़्म और फेबियन समाजवादी आन्दोलनों के बावजूद सत्ता पर साम्राज्यवादी शक्तियों ने ही अधिकार कर लिया।

राजनीतिक आन्दोलन स्वतन्त्रता और सामाजिक न्याय की मूर्त भावनाओं से प्रेरित होते हैं। फिर भी यह गारंटी नहीं दी जा सकती कि जनता में ये प्रजातांत्रिक मूल्य अन्तर्भूत हो ही जाएँगे। लोकतन्त्र, सामाजिक न्याय, समता तथा बन्धुत्व की भावनाएँ राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रियाओं का उत्पाद नहीं हो सकतीं। ऐसी मानवीय आकांक्षाएँ मनुष्य में अन्तर्निहित प्रेम, सहयोग, करुणा और पारस्परिक सापेक्षता के आचरण से ही विकसित और व्यवहृत हो सकती हैं। यह विवेकानन्द का दाय और दावा था कि वे तत्कालीन प्रचलित सभी तरह के सुधारवादी आन्दालनों से अधिक और आमूल सुधारवादी आन्दोलन लाए जाने के पक्ष में थे। आन्दोलन का यह बीज मनुष्य की नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति से प्रसूत होना चाहिये। अपने 'ज्ञानयोग' की व्याख्या में उन्होंने कहा था – "Violent attempts at reform always end in retarding true reform." अपने अन्य निबन्ध 'मेरी क्रान्तिकारी योजना' में विवेकानन्द पुनः कहते हैं, ''सुधारकों से मैं कहूँगा कि मैं स्वयं उनसे कहीं बढ़कर सुधारक हूँ। वे लोग केवल इधर-उधर थोड़ा सुधार करना चाहते हैं और मैं चाहता हूँ आमूल सुधार। हम लोगों का मतभेद है केवल सुधार की प्रणाली में। उनकी प्रणाली विनाशात्मक है, और मेरी रचनात्मक। मैं सुधार में विश्वास नहीं करता, मैं विश्वास करता हूँ स्वाभाविक उन्नति में।''

(क्रमशः)

: विश्वगुरु भारत और भारतीय संस्कृति :

दुर्गाचरण झा 'दुर्गेश'

शिक्षक, रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

आज ईसा की इस बीसवीं शताब्दी के अन्त में भारतीय नवयुवकों के अन्दर अपनी संस्कृति और धर्म के प्रति एक प्रकार की घृणा हो चली है। उनकी दृष्टि में अपना कुछ मूल्य ही नहीं रह गया है। उनकी बुद्धि पर एक ऐसी भयानक छाया आ पड़ी है, जिससे रोम और ग्रीस की संस्कृति, अरब और ईरान की संस्कृति ही उन्हें अच्छी दीखती है और उनकी अपनी विश्व विजयिनी भारतीय संस्कृति उन्हें सब से हेय लगती है। भारतीय विद्यार्थियों और नव युवकों में ऐसे भ्रम उत्पन्न होने के मुख्य कारण हैं – (१) स्वयं उनकी अपनी संस्कृति के प्रति अज्ञता और (२) भ्रामक पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन।

आज के प्रमुख साहित्यकारों में माने जानेवाले श्री एच.जी. वेल्स ने अपनी पुस्तक 'दि हिस्ट्री आफ दी वर्ल्ड' में भारतीय संस्कृति को विश्व की अन्य संस्कृति में अग्रगण्य न मानकर रोमन और ग्रीस संस्कृतियों को अग्रणी बताया है। पर इससे विद्वान लेखक की अज्ञता ही प्रकट होती है। .... ज्ञात होता है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति और धर्म के अध्ययन करने का कभी प्रयत्न ही नहीं किया। अतएव उनका उपर्युक्त कथन निश्चय ही निष्पक्ष नहीं माना जा सकता। भारतीय विद्वानों के विचार तो अपनी संस्कृति के पक्ष में होंगे ही। पर इस लेख का मुख्य उद्देश्य यूरोपियन और अमेरिकन विद्वानों के कतिपय विचारों द्वारा यह सिद्ध करना है कि वास्तव में ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में भारतीय विश्व का गरु रह चुका है। आज से युगों पूर्व स्मृतिकार मनु ने विश्व को निमन्त्रण दिया था कि वह भारत के तप:पूत ऋषियों से आचार-विचार के सम्बन्ध में कुछ शिक्षा ले। यदि हम ध्यान से देखें, तो यह केवल वाग्जाल मात्र नहीं है। वास्तव में भारतवासियों में ऐसी ही शक्ति थी और अभी भी है, यदि वे अपनी यथार्थ शक्ति को जाग्रत, प्रबुद्ध और प्रकट कर सकें तो।

जब विश्व असभ्य था और यूरोप अमेरिका, अफ्रिका आदि महाद्वीपों के प्राणी गुफाओं में निवास कर अपने नग्न शरीरों को पत्तियों से ढकते थे, उस समय सभ्य भारतीयों ने विश्व को जो प्रकाश की किरणें दीं, उन्हें कुछ पूर्वी और पश्चिमी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। भारतीय सभ्यता और धर्म की अति प्राचीनता में श्री प्लाइनी (Pliney), श्री अबुल फज़ल, श्री हीरेन (Prof. Heeren), मैक्स मूलर आदि विद्वान एक मत हैं। डॉ. गोकुलचन्द नारंग ने अपनी पुस्तक "रियल हिन्दुइज्म (Real Hinduism) में लिखा है, प्रो. मैक्समूलर आदि सभी विद्वानों ने इसे स्वीकार किया है कि प्राचीन विश्व के सभी राष्ट्रों की सभ्यता का मूल स्रोत भारत ही है। यही नहीं, मुद्रा विनिमय, गणित, अर्थशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, साहित्य, अंक गणित, बीज गणित, अक्षर और अंक ज्ञान, दर्शन तथा चित्रकला ज्ञान के सभी अंगों में आज का विश्व भारतीयों का ऋणी है।

भारतीयों ने पहले पहल मुद्रा का निर्माण किया था जैसा कि श्री प्रिंसेप (Princop) ने कहा है। ईसा के ८०० वर्ष पूर्व भी भारतीयों में विनिमय की सुव्यवस्थित प्रथा प्रचलित थी। उस समय की आवश्यकताओं के अनुसार भारतीयों द्वारा संगठित सरकार सर्वश्रेष्ठ थी और उनके द्वारा निर्धारित न्याय के नियम ही इजिप्शियन, परशियन, रोमन और ग्रीक नियमों के आधार थे। जब विश्व को अक्षर-ज्ञान भी न था, तब नालन्दा, तक्षशिला, श्री धन्य और कटका के विश्वविद्यालय छात्रों से परिपूर्ण रहा करते थे। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, इसे डॉ. बेलेटाइन (Dr. Ballantene) और बाप्प (Bopp) जैसे विद्वानों ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है कि संस्कृत ही एक ऐसी भाषा थी, जो विश्वभर में प्रचलित थी और यही समस्त भारतीय और यूरोपियन भाषाओं की जननी भी है। भारतियों को अक्षर और भाषा-ज्ञान अनादि काल से है और यहाँ तक कि ईसा के २४०० वर्ष तथा इब्राहीम के ८०० वर्ष पूर्व की लिखी पुस्तकें तक पायी गई हैं।

अब लीजिये भारतीयों के साहित्य को – जहाँ तक वेद का प्रश्न है, सभी विद्वानों ने इसे सर्वश्रेष्ठ माना है। प्रो. मैक्समूलर ने कहा है, "इसकी समानता में विश्व साहित्य ने अब तक कुछ भी नहीं दिया।" प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक वाल्टेयर (Voltaire) ने जब ऋग्वेद को देखा, तो वह आश्चर्य से चिल्ला उठा कि केवल इसी दिन के लिये पश्चिम पूर्व का ऋणी रहेगा। प्रसिद्ध व्याकरण शास्त्री सर मोनियर विलियम्स (Sir Monier Williams) ने पाणिनि का व्याकरण देखकर कहा – इससे बढ़कर विश्व ने व्याकरण के नियम

कभी बनाये ही नहीं। इसका एक-एक सूत्र आश्चर्य-चकित कर देता है। काव्य में विश्व के किसी राष्ट्र ने ऐसा साहित्य नहीं उत्पन्न किया, जो रामायण और महाभारत की समानता कर सके।

वेदों के अनुवादक प्रिन्सपल ग्रिफिथ ने रामायाण के बारे में लिखा है, "विश्व के किसी भी काव्य में कवित्व और नैतिकता का ऐसा सम्मिश्रण नहीं पाया जाता। रामायण की समानता हौमर रचित तीन इलियड और महाभारत की समानता बारह इलियड भी नहीं कर सकते।"

भारतीय नाट्य शास्त्र पर सर विलियम जोन्स (Sir Williom Jones) ने लिखा है कि भारतीय नाटकों की समानता में आज विश्व के विकसित राष्ट्रों के नाटक भी नहीं आ सकते। अभिज्ञानशाकुन्तलम् को पढ़कर तो जर्मनी का प्रसिद्ध कवि गेटे (Goethe) गद्‌गद हो उठा और उसने स्वयं भी एक कविता लिख दी। उसके प्रसिद्ध नाटक (Ferest) की प्रस्तावना शकुन्तला की ही प्रेरणा है।

भारतीयों के गीति-काव्यों पर प्रो. हीरेन का मत है कि ग्रीक साहित्य की तुकान्त और अतुकान्त दोनों प्रकार की कविताएँ भारतीय गीत-काव्यों के सम्मुख परास्त हैं। गीत गोविन्द को पढ़कर मन्त्रमुग्ध न होना किसी के लिये असम्भव है । मेघदूत के बारे में नि. फाउच ने लिखा है – यूरोपियन साहित्य में इसका जोड़ नहीं है। कथा साहित्य में श्री एलपिसटन के मतानुसार भारतीय विश्व-शिक्षक हैं।

अब दर्शन को लीजिये – प्रो. मैक्स मूलर (Prof. Max Muller) जैसे विद्वान ने कहा है - "हिन्दू जाति दार्शनिकों की जाति है। डॉ. डफ कहते हैं कि "यूरोपियन दर्शन भारतीय दर्शन का अत्यन्त ऋणी है।" प्रो.गोल्ड स्टकर (Prof. Goldstueker) को तो सब दर्शनों का तत्त्व भारतीय दर्शनों में मिलता है। सर मोनियर विलियम्स के अनुसार पिथागोरस और प्लैटो, दोनों अपने पुनर्जन्म सम्बन्धी प्रसिद्ध सिद्धान्तों के लिये भारतीय दर्शन से अत्यधिक प्रभावित हैं। प्राचीन पश्चिमी दार्शनिक ही नहीं, बल्कि आधुनिक विश्व भी और विशेषत: आज का यूरोपियन और अमेरिकन दार्शनिक-जगत भारतीय दर्शन से बहुत प्रभावित है। स्वामी विवेकानन्द के पर्यटन ने तो अमेरिका को विशुद्ध भारतीय दर्शन के बीच लाकर खड़ा कर दिया है। .. यह तो हुई दर्शन की बात। किन्तु विज्ञान के क्षेत्र में भी प्राचीन भारत और भारतीय संस्कृति ने बहुत कुछ दिया है। पहले चिकित्सा शास्त्र पर दृष्टिपात कीजिये। सन् १९०५ ई. में मद्रास के गवर्नर लार्ड ऐम्पथिल (Lord Ampthile) ने कहा था – चिकित्सा विज्ञान की जन्मभूमि भारत ही है। यहीं से पहले अरबवालों ने इसे सीखा और १७वीं शताब्दी के अन्त में यूरोपियन चिकित्सकों ने उसे अरब वालों से सीखा।"

गणित में भी भारतीयों की देन बेजोड़ है। वास्तव में इस विज्ञान को इतना उन्नत करने का श्रेय इन्हीं को है। मि. मैनिंग ने लिखा है कि अरबों ने अंक गणित भारतीयों से सीखा और यूरोप वालों ने इसे अरबों से लिया।" सर-मोनियर विलियम्स के कथनानुसार बीज गणित भी अरबों ने भारतीयों से सीखा। जहाँ तक रेखा गणित का प्रश्न है, इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि पिथागोरस का ४७वाँ थेरम भारतीयों ने शताब्दियों पूर्व ही हल कर दिया था।

ज्योतिष के बारे में प्रो. वेबर (Prof. Webior) कहते हैं कि अरब भारतियों के शिष्य थे। "मि. डेविस के गणनानुसार भारतीय ज्योतिष विशारद पराशर इसा के १३८ वर्ष पूर्व हो चुके हैं। मि. काल ब्रूक ने लिखा है कि आर्यभट्ट को पृथ्वी का अपनी धुरी पर घूमना ज्ञात था। उन्होंने सूर्य और चन्द्र ग्रहण के वास्तविक कारण का भी पता लगाया था।

ज्ञान विद्या के बारे में मि. कोलमैन का केवल यह वाक्य उद्धृत करना ही पर्याप्त होगा कि भारतीय गान-विद्या के सिद्धान्त हमारे यूरोपीय सिद्धान्तों से कहीं अच्छे हैं। कहाँ तक लिखा जाय, मछली पकड़ने से लेकर खनिज पदार्थों तक सभी विषयों पर पुस्तकें लिखी गयी थीं।

अब लीजिये चित्रकला के बारे में। मि. हावेल (Prof. Hovell) लिखते हैं कि भारतीय चित्रकला का स्थान यूरोप और एशिया, दोनों में सर्वश्रेष्ठ है। वे आगे लिखते है कि यदि यूरोपियन चित्रकला में कोई नयी प्रेरणा आती हैं, तो यह निश्चय पुन: पूर्व (भारत) से आयेगी। मूर्ति कला के लिये तो भारत सदैव से विश्व का अग्रणी रहा है। मि. विन्सेन्ट स्मिथ, कर्नल टांड, प्रो. वेबर आदि भारत की मूर्ति कला को देखकर स्तब्ध रह गये हैं। अशोक का स्तम्भ, रामेश्वर का मन्दिर, एलोरा की गुफाएँ आज भी विश्व को चुनौती दे रही हैं। अजन्ता की गुफाएँ आज भी भारत की कीर्ति ध्वजा को ऊँचा किये हुए हैं।

भारतीयों की शासन व्यवस्था उनके राज्य-नियम और न्याय विभाग के सुगठन की महत्ता तो निर्विवाद है।

मि.लूइ जेकोलियट (Loueis Jacoliot) अपनी पुस्तक Bible in India में लिखते हैं – मनुस्मृति वह नींव है,

जिस पर इजिप्शियन, परशियन, ग्रीक और रोमन न्याय और नियमों का भव्य प्रासाद खड़ा है। आधुनिक यूरोप पर भी मनु का एक विशेष प्रभाव है।''

आज अमेरिका जैसे उन्नत राष्ट्र भी भारतीयों की विद्वता को स्वीकार करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द के अमेरिका प्रवास-काल में उन्होंने जो सफलता प्राप्त की, वह तो महान थी ही, लेकिन उसी समय अमेरिका के एक प्रसिद्ध पत्र न्यूयार्क हेरल्ड ने लिखा था, ''यह कितनी मूर्खता की बात है कि हम (अमेरिकन) भारत जैसे विद्वान देश में अपने प्रचार के निमित्त मिशनरी भेजें।''

आज से एक सौ वर्ष पूर्व भारतवर्ष ने, जो प्राचीनकाल से ही उच्च कोटि के अनेक सन्तों और ऋषियों की जन्मभूमि रही, अपनी परम्परा के अनुसार विश्व को स्वामी विवेकानन्द के रूप में मानव जाति का एक सुन्दरतम पुष्प प्रदान किया। स्वामीजी के व्यक्तित्व के विविध रूप थे। वे देशभक्त तो थे ही, सन्त भी थे और उत्कट राष्ट्रवादी के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रवादी भी थे। वे भारतीय संस्कृति की समस्त शक्ति और सौन्दर्य को लेकर अपने देशवासियों के समक्ष खड़े हुए और प्रगति और विकास की अपनी धारणा के अनुसार राष्ट्र के पुनर्निर्माण के कार्य में संलग्न हो गये। इस वीर संन्यासी की रणभेरी बजते ही ऊँघती हुई भारत की आत्मा जाग-उठी और उसने विविध रूप में अपनी अभिव्यक्ति की।

स्वामी विवेकानन्द ने एक नवीन सभ्यता के ऐसे प्रभात का दर्शन किया था, जिससे यद्यपि विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों का समन्वय सम्भव होगा, फिर भी प्रत्येक के विस्तार और विकास के लिये सम्यक सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। उन्होंने इस संश्लेषणात्मक आदर्श का उपदेश भारत को ही नहीं वरन् पश्चिम को भी दिया और विमूढ़ लड़खड़ाती मानवता को उस सम्पन्न संस्कृति का संकेत किया, जिससे विश्व में शान्ति की स्थापना सम्भव होगी। ○○○

पहले रोटी और तब धर्म चाहिए। गरीब बेचारे भूखों मर रहे हैं और हम उन्हें आवश्यकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं। मतमतान्तरों से पेट नहीं भरता। हमारे दो दोष बड़े ही प्रबल हैं — पहला दोष हमारी दुर्बलता है, दूसरा है घृणा करना, हृदयहीनता।

— स्वामी विवेकानन्द

सचिच्दानन्द ही गुरु हैं

श्रीरामकृष्ण परमहंस

गुरु वाक्य में विश्वास करना चाहिये। गुरु ही सच्चिदानन्द, सच्चिदानन्द ही गुरु है; उनकी बात पर विश्वास करने से, बालक की तरह विश्वास करने से, ईश्वर प्राप्ति होती है। बालक का क्या ही विश्वास है ! माँ ने कहा, 'वह तेरा भाई लगता है,' उसी समय जान लिया, 'वह मेरा भाई है।' एकदम पूरा पक्का विश्वास। ऐसा भी हो सकता है कि वह लड़का ब्राह्मण के घर का है, और वह 'भाई' सम्भव है कि किसी दूसरी जाति का हो। माँ ने कहा, उस कमरे में 'जूजू' है। बस, पक्का जान लिया, उस कमरे में 'जूजू' है। यही बालक का विश्वास है; गुरुवाक्य में इसी प्रकार विश्वास करना चाहिए। सयानी बुद्धि, हिसाबी बुद्धि, विचार बुद्धि रहने से ईश्वर को प्राप्त नहीं किया जा सकता। विश्वास और सरलता होनी चाहिए, कपटी होने से न होगा। सरल के लिये वे बहुत सहज हैं। कपटी से वे बहुत दूर हैं

कोई सोचता है कि मुझे ज्ञानभक्ति न होगी, मैं शायद बद्धजीव हूँ। श्री गुरु की कृपा होने पर कोई भय नहीं है। बकरियों के एक झुण्ड में बाघिन कूद पड़ी थी। कूदते समय बाघिन को बच्चा पैदा हो गया। बाघिन तो मर गयी, पर वह बच्चा बकरियों के साथ पलने लगा। बकरियाँ घास खातीं, तो वह भी घास खाता। बकरियाँ 'में में' करतीं, तो वह भी करता। धीरे-धीरे वह बच्चा बड़ा हो गया। एक दिन इन बकरियों के झुण्ड पर एक दूसरा बाघ झपटा। वह उस घास खाने वाले बाघ को देखकर आश्चर्य में पड़ गया। दौड़कर उसने उसे पकड़ा, तो वह 'में में' कर चिल्लाने लगा। उसे घसीटकर वह जल के पास ले गया और बोला, 'देख, जल में तू अपना मुँह देख। देख, मेरे समान तू भी है, और ले यह थोड़ा-सा माँस है, इसे खा ले।' यह कहकर वह उसे बलपूर्वक खिलाने लगा। पर वह किसी तरह खाने को राजी न हुआ, 'में में' चिल्लाता ही रहा। अन्त में रक्त का स्वाद पाकर वह खाने लगा। तब उस नये बाघ ने कहा, 'अब तूने समझा कि जो मैं हूँ, वही तू भी है। अब आ, मेरे साथ जंगल को चल।'

इसीलिए गुरु की कृपा होने पर फिर कोई भय नहीं। वे बतला देंगे, तुम कौन हो, तुम्हारा स्वरूप क्या है।

''थोड़ा साधन करने पर गुरु सब बातें साफ-साफ समझा देते हैं। तब मनुष्य स्वयं समझ सकता है, क्या सत् है, क्या असत्। ईश्वर ही सत्य और यह संसार अनित्य है।''

काव्य-लहरी

रामकृष्ण जय

स्वामी श्रुतिसारानन्द

रामकृष्ण जय जग-जन नायक
दयासिन्धु चिर दीन-सहायक।
साधु-संग-महिमा गुण-गायक
सन्त-सुजन मन अति सुखदायक ।
जीवहृदय अघ-तिमिर-विनाशक
भक्तमुदितमन मंगलकारक ।
काम-क्रोध-मद-लोभ विदारक
जय त्रिताप भव-भय संहारक ।
रासरसिक रसभाव उपासक
गोपी-गीता मर्म प्रकाशक ।
शरणागत प्रति अभय-प्रदायक
भक्ति-ज्ञान पथ अमल विधायक ।
मति अनुकूल पन्थ उद्घोषक
सदाचार सन्मति के पोषक
श्रुति-प्रतिपादक जग कैवर्तक
रामकृष्ण जप जीवन सार्थक ।।

(प्रस्तुत कविता विवेक-ज्योति, १९७३ के अन्तिम त्रैमासिक अंक से पुनर्मुद्रित की गई है।)

हे माँ सारदे !

पुरुषोत्तम नेमा, गोटेगाँव

असार संसार को सुख का सार दे, सारदे !
सन्तप्तों को शीतलता का आधार दे, सारदे !!
कटुता के मरुस्थल को, नकार दे, सारदे !
प्यासों को जीवन की रसधार दे, सारदे !!
अन्धे अहं को स्व ज्योति से सँवार दे, सारदे !
भटके जन को पूजा का अधिकार दे, सारदे !!
विषम विष भव-व्याल का उतार दे, सारदे !
मति-मालिन्य को चैतन्य का निखार दे, सारदे !!
भ्रान्त हैं, आकूल हैं, ज्ञान दे, करार दे, सारदे !
शिशुओं के हक का प्यार दे, दुलार दे, सारदे !!

माँ सारदा

चन्द्रमोहन, टुंडला

जगमाता थीं बनी सारदा, रामकृष्ण पहचाने थे ।
माँ सम पूजित करके तुमको, ब्रह्मचर्यव्रत धारे थे ।।
पूर्ण समर्पण करके तुमने, उनको दिया सहारा था ।
पवित्रता परिभाषित कर, घर संन्यास सवाँरा था ।।
ठाकुर परलोक सिधारे जब, तुम भक्तों का केन्द्र बनीं ।
नमक भात पर सालों काटे, स्वाभिमान की सदा धनीं।।
जूठी अमजद की पत्तल, तुमसे जाति न कहती थी ।
भक्त ग्राम में आते जब, माँ सम सेवा करती थी ।।
दिखती उलझी घर-बार में, पर अनासक्त हो रहती थी ।
जीने को सहारा कुछ तो हो, सो राधू राधू करती थी ।।
दोष दूसरों के मत देखो, शान्ति अगर चाहो मन की ।
अपने दोष, सदा ढूंढ़ो अन्तिम सीख यही उनकी ।।
दीर्घ काल तक था तुमने, घोर पापियों को तारा ।
तनय गोद आ बैठे अब, तन-मन तुझको है वारा ।।

न्यारा हिन्दुस्तान

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

सब देशों में सबसे बढ़कर न्यारा हिन्दुस्तान ।
हमको लगता प्राणों से भी प्यारा हिन्दुस्तान ।।

भारत भी है, इसी देश का परम पुरातन नाम,
इसकी धरती, नदियाँ, पर्वत सब अति ही अभिराम,
महाकाल से भी न आज तक हारा हिन्दुस्तान ।।

अखिल विश्व में गौरवमय है इसका ही इतिहास,
मानवता की आदि भूमि यह मानव का उल्लास।
रहा बहाता सत्य-धर्म की धारा हिन्दुस्तान।।

चाहे जो भी शरणागत हो, उसका करता त्राण,
त्याग-तपस्या-शौर्य-सलिल से सिंचित इसके प्राण ।
पुण्य प्रकृति से सदा मनोहर सारा हिन्दुस्तान ।।

इसकी रक्षा में तत्पर हम देंगे जीवन दान,
हम चमकेंगे बनकर इसके अम्बर का दिनमान ।
जग में जगमग रहे सदैव हमारा हिन्दुस्तान ।।

बाल गंगाधर तिलक

बाल गंगाधर तिलक का जन्म २३ जुलाई, १८५६ को महाराष्ट्र के रत्नागिरि जिले में हुआ था। उनका पूरा नाम बलवन्तराव था , किन्तु घर में उन्हें बाल कहके पुकारते थे। बाद में यही नाम आजीवन उनके साथ रहा। उनके पिता गंगाधर राव संस्कृत के विद्वान पण्डित थे और माता श्रीमती पार्वतीबाई स्वभाव से धार्मिक थीं।

बाल तिलक की स्मरणशक्ति तीव्र थी। विद्यालय में प्रवेश करने के पहले ही उन्हें संस्कृत के बहुत से श्लोक कण्ठस्थ हो गए थे। इसका कारण यह भी था कि उनके पिताजी उन्हें एक श्लोक कण्ठस्थ करने पर एक पैसा पुरस्कार के रूप में देते थे। बाल तिलक भी बड़े उत्साह से श्लोकों को याद करते और इस तरह उन्होंने बहुत से रुपये एकत्र कर लिये थे।

बाल तिलक की सत्य के प्रति बड़ी निष्ठा थी। एकबार कक्षा में कुछ विद्यार्थियों ने मूँगफली खाकर उसके छिलके बाहर आँगन में फेंक दिए। अध्यापक ने इसका आरोप बालक तिलक पर लगाया। तिलक ने बड़ी निर्भयता से इसका विरोध किया।

आठ वर्ष की उम्र में उनका उपनयन संस्कार हुआ। उनके वैदिक गुरु भी यह देखकर आश्चर्यचकित हो गए कि उपनयन संस्कार के पूर्व ही उन्हें संस्कृत व्याकरण का बहुत अंश कण्ठस्थ हो गया है।

उनकी शिक्षा पूना में हुई थी। एकबार कक्षा में शिक्षक ने गणित के एक प्रश्न का उत्तर लिखने को कहा। तिलक चुपचाप बैठे रहे। अध्यापक ने जब इसका कारण पूछा तो उन्होंने बिना लिखे, मौखिक ही प्रश्न का हल कर दिया। यदि उनसे काले बोर्ड पर प्रश्न का हल करने को कहा जाता तो चाक से हाथ खराब करने के भय से वे मौखिक उस प्रश्न का उत्तर सुनाने लग जाते।

उनकी बुद्धि बड़ी एकाग्र थी। आजकल के विद्यार्थियों की तरह वे दिनरात केवल पढ़ाई ही नहीं करते थे। उनकी स्मरणशक्ति तीव्र थी, इसलिए उन्हें नोट्स निकालने की कभी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। वे कुछ चुनी हुई पुस्तकें पढ़ते और थोड़े समय में ही उसे पूरा कर लेते और उस समय कोई उनके कान के पास नगाड़ा भी पीटता तो उस ओर उनका ध्यान नहीं जाता। बाकी समय अपने सहपाठियों के साथ हास्य-विनोद एवं खेल-कूद में बिता देते।

कॉलेज में पढ़ते समय वे नित्य सबेरे अखाड़े में जाते और वहाँ कुश्ती लड़ते या तो नदी में तैरने चले जाते। कॉलेज के प्रथम वर्ष में उनका शरीर एक रोगी की तरह दिखता था। सिर छोटा, पेट बड़ा और हाथ-पैर पतले। उन्होंने ठान ली थी कि वे अपने शरीर को सुगठित, बलवान और हृष्ट-पुष्ट करेंगे। वे नियमित दो घण्टे अखाड़े में बिताते, दण्ड-बैठक करते एवं बोटिंग आदि जैसे व्यायाम करते और उसके साथ अच्छी खुराक भी ग्रहण करते। इस तरह अपने शरीर को ऐसा बलवान बना लिया कि लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

बचपन से ही उनके हृदय में स्वराज्य, स्वधर्म और स्वदेश के प्रति प्रेम था। कॉलेज में बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने एल. एल. बी. की परीक्षा पास की। भारत में शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए उन्होंने पूना में 'न्यू इंग्लिश स्कूल' की स्थापना की थी।

उस समय भारत अंग्रजो के अधीन था। तिलक किसी भी तरह अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्रता दिलाना चाहते थे। उन्होंने 'मराठा दर्पण' और 'केसरी' नाम के समाचार पत्र निकाले, जिसमें अंग्रजों की दमन नीति का खुले आम विरोध किया। इस कारण उन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा। एक बार मांडले जेल में रहते समय उन्होंने 'गीता रहस्य' नामक पुस्तक लिखी। यह उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति मानी जाती है, जिसका कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

आजकल महाराष्ट्र और देश के अन्य भागों में जो गणेशोत्सव और शिवाजी महोत्सव मनाया जाता है उसके मुख्य प्रणेता तिलक जी हैं। भारतीयों को एकसूत्र में बाँधने के लिए इस तरह के सांस्कृतिक उत्सवों पर वे जोर देते थे। अंग्रजों के विरुद्ध उनका यह नारा – 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे मैं लेकर रहूँगा' – आज भी बच्चे बड़े गर्व के साथ कहते हैं। ○○○

युवकों की जिज्ञासा और उसका समाधान

स्वामी सत्यरूपानन्द,
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

२७. प्रश्न – हमें कोई भी बड़ा काम करने से पहले अपना मन शान्त करना आवश्यक क्यों है?

– गजानन्द बेहरा, रायगढ़

उत्तर – किसी भी कार्य की सफलता मन की एकाग्रता और उस कार्य में निष्ठापूर्वक लगे रहने पर निर्भर करती है। चंचल मन से हमारी आन्तरिक शक्तियाँ बिखर जाती हैं और बड़ा क्या हम सामान्य कार्य में भी असफल हो जाते हैं। आचार्य स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि मनुष्य के भीतर अनन्त शक्तियाँ हैं, किन्तु बहुत कम अवसरों पर हमें अपने भीतर की शक्तियों का स्मरण हो पाता है।

मन की शक्तियाँ हमारे भीतर रहते हुए भी प्राय: हमारे अधीन नहीं रह पातीं। इसका प्रमुख कारण यह है कि हम अपने मन की छिपी हुई शक्तियों से भलीभाँति परिचित नहीं होते हैं। हम साधारणत: अपने मन की चेतन एवं अचेतन शक्तियों से थोड़ी मात्रा में परिचित हो पाते हैं। किन्तु हम सभी उन शक्तियों का पूरी तरह उपयोग नहीं कर पाते, क्योंकि वे शक्तियाँ हमारे नियन्त्रण में नहीं रहतीं। यह एक अनूठा सत्य है कि जिस व्यक्ति का मन अपनी मानसिक शक्तियों से जितना अधिक परिचित होता है, वह व्यक्ति उतना ही अधिक उसका उपयोग कर पाता है।

इसलिये हमें अपने मन से परिचित होकर, उसे संयमित करना चाहिये। तब हमारा मन अधिक शक्तिशाली होकर हमारे सभी कार्यों में सहयोगी होगा और हम छोटे-बड़े सभी कार्यों में सफल होंगे। कहा भी है, मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

२८. प्रश्न – हमारे मन में गलत विचार क्यों आते हैं? प्रदीप साहू, बिलासपुर

उत्तर – मन में अच्छे या बुरे विचार प्राय: अचानक ही आ जाते हैं, किन्तु हमारा विवेक तत्काल ही हमारे मन के विचारों के प्रति हमें सजग कर देता है। यह दूसरी बात है कि अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण हम अपने मन को सन्तुलित नहीं रख पाते हैं। वस्तुत: संतुलित मन ही हमारे शुभ एवं सन्तुलित विचारों का निर्माता होता है। अत: हमें सदैव सन्तुलित रहकर शुभ, कल्याणकारी और नैतिक विचारों के चिन्तन का ही अभ्यास करना चाहिये।

करना है निर्माण हमें नव भारत का निर्माण

पिनाकिन ठाकुर

करना है निर्माण हमें नव भारत का निर्माण - २
हमें हमारे देश की जग में बढ़ानी होगी शान ।।
यही हमारी सब धरती हो, खेतों में हरियाली ।
फूल-फलों से झूम रही हो, वन-वन डाली-डाली ।।
नदी-नहर सरवर बरखा के जल से बरसे धान ।।
करना है निर्माण हमें नव भारत का निर्माण ।।
हिमगिरि के ऊँचे शिखरों पर फूल चढ़ाने जायें ।
रत्नाकर के अतुल नीर नित, खोज के रत्नों पायें ।।
गाएँ बन कुंजों की लहरें, सुन्दरता के गान ।।
करना है निर्माण हमें नव भारत का निर्माण ।।
कोई न भेद रहे आपस में हम-सब भाई-भाई ।
भारत की सब सन्तानों में सच्ची प्रेम-भलाई ।।
सत्य-अहिंसा के प्रण से, पत्थर में प्रगटे प्राण ।।
करना है निर्माण हमें नव भारत का निर्माण ।।

(पृष्ठ ३०८ का शेष भाग)

कुछ त्रुटि होने पर तत्क्षण वह विचार उनके मन में आ जाता। एकबार जाड़े की रात में उनके मन में आया कि भूल से सोने के समय ठाकुर के शरीर पर रजाई नहीं डाली गई है। यह बात मन में आते ही वे पूजा-कक्ष में गए और देखा कि सचमुच ठाकुर के शरीर पर गरम वस्त्र नहीं दिया गया है। उन्होंने ठाकुर के शरीर पर रजाई डाली और तब निश्चिन्त सो सके।

नवागत ब्रह्मचारियों को वे कहते, 'देखो, इसे केवल ठाकुर का चित्र मत समझो। वे सचमुच यहाँ विराज रहे हैं। उनकी प्रत्यक्ष उपस्थिति का मन-ही-मन अनुभव करो एवं उसी भाव से सेवा करने की चेष्टा करो।'

साधारणत: उपासना-पद्धति में मानसिक पूजा के समय गुरु की पूजा कर गुरु को इष्ट में लीन करने का विधान होता है। साधना की परिपक्व अवस्था में गुरु साधक को इष्ट के दर्शन करा देते हैं और स्वयं उसमें लीन हो जाते हैं। उसी गुरु-इष्ट के एकात्म रूप की सेवा कर साधक क्रमश: अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचता है। स्वामी रामकृष्णानन्द के लिए गुरु और इष्ट श्रीरामकृष्ण ही थे। सचमुच गुरुसेवा का अद्भुत उदाहरण स्वामी रामकृष्णानन्द भावी पीढ़ी के लिए छोड़ गए हैं। ○○○

छत्तीसगढ़ उत्खनन में सामवेद की मुहर मिली

जे. आर. भगत, निदेशक, तरीघाट उत्खनन

(समाचार पत्र में तरीघाट में बहुत से महत्वपूर्ण अवशेषों की जानकारी मिली। डॉ. बी. एल. सोनकर और श्री कपिल चन्द्राकर जी के साथ जाकर उस स्थान का निरीक्षण किया तथा उस उत्खनन के निदेशक श्री जे.आर. भगत जी से वार्ता एवं प्राप्त विवरण पर यह निबन्ध प्रस्तुत है। इसके अँग्रेजी विवरण को हिन्दी में भलगो कोचिंग सेन्टर के निदेशक, श्री डी. एम. साहू जी ने उपलब्ध कराया। - सम्पादक)

२००८ में आकस्मिक निरीक्षण के दौरान तरीघाट गाँव में पहुँचने पर ग्रामीणों ने बताया कि नदी के तट पर टीला है, जिसे ग्रामीण जगतपाल का टीला कहते हैं। तत्पाश्चात मैंने टीले का निरीक्षण किया। निरीक्षण के दौरान मृणमय मणिकायें, मिट्टी के बर्तनों के पात्र, टुकड़े और मृणमय मूर्तियाँ आदि प्राप्त हुईं। वर्ष २००९-१० में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग, नई दिल्ली को उत्खनन अनुज्ञा हेतु आवेदन पत्र भेजा गया। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग नई दिल्ली के द्वारा गहन सर्वेक्षण हेतु अनुज्ञा जारी की गई। गहन सर्वेक्षण के बाद पुन: वर्ष २०१०-११ में उत्खनन अनुज्ञा हेतु आवेदन किया गया। जिसे भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग ने स्वीकार कर फिर से गहन सर्वेक्षण हेतु अनुज्ञा जारी की। वर्ष २०१२-१३ में लगातार उत्खनन हेतु भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग, नई दिल्ली के द्वारा अनुज्ञा जारी की जारी है और संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, छत्तीसगढ़ शासन के द्वारा निरन्तर खुदाई जारी है।

भारत में पहली बार तरीघाट (छत्तीसगढ़) में मिली सामवेद की मुहर
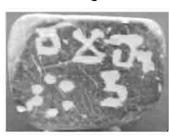
तरीघाट उत्खनन में विलक्षण तथ्य सामने आ रहे हैं। इसमें सामवेद की लिखी हुई एक मुहर मिली है। तरीघाट उत्खनन में प्राप्त इस कुषाण कालीन प्रस्तर मुहर में चार अक्षर और छह बिन्दु बने हुए हैं इनमें लिखे हुए अक्षर ब्राह्मी और भाषा प्राकृत है। मुहर की चौड़ाई ढाई से.मी. और लम्बाई चार से.मी. है। यह भारत की पहली मूहर है जिसमें सामवेद का उल्लेख है। २५०० वर्ष पहले से ही भारत में सामवेद का प्रचलन था, इस उत्खनन से सिद्ध हो रहा है।

परिशिष्ट - २

उत्खनन की एक संक्षिप्त रिपोर्ट (२०१३-१४)

उत्खनन का उद्देश्य

उत्खनन का मुख्य लक्ष्य और उद्देश्य स्थल के लुप्त कालानुक्रम का पता लगाना, इसे केन्द्र, राजधानी या प्रमुख शहर के रूप में स्थापित करना और कुषाण-पूर्व अवधि पर अद्यतन प्रकाश डालना है। यह उत्खनन इन उद्देश्यों की कुछ सीमा तक पूर्ति करता है। तथापि उत्खनन के वर्तमान सत्र के मुख्य परिणाम निम्नानुसार हैं।

तरीघाट, तहसील-पाटन, जिला-दुर्ग, छत्तीसगढ़ मध्य भारत में एक महत्त्वपूर्ण प्राचीन ऐतिहासिक स्थल है। नदी किनारे स्थित नगरों में से तरीघाट का स्थान महत्वपूर्ण है। प्राचीन कोसल क्षेत्र में इसकी स्थिति राजनैतिक और आर्थिक दृष्टिकोण से रणनीतिक विशिष्ट रही है। यह स्थल खारून नदी के बाएँ तट पर स्थित है। नदी की कुल लम्बाई लगभग १२०.७ कि.मी. है। इसका तल सामान्यत: चट्टानयुक्त है और इसका जल गड्ढों में और यहाँ तक कि ग्रीष्मकाल में भी पतली धारा में उपलब्ध है। नदी की माटी बहुत ही उपजाऊ है और यहाँ प्रमुखत: धान की खेती होती है।

वनस्पति (पेड़-पौधे) और जीव-जन्तु – इस क्षेत्र में उपलब्ध वनस्पति (पेड़-पौधे) बाँस, साजा, बीजा, तेन्दु, कुसमी, बेर, गंद्री बबूल, सीताफल, आदि प्रमुख वनस्पतियाँ हैं। इस क्षेत्र में नीम और आम के वृक्ष अधिक पाए जाते हैं। इस क्षेत्र में अधिकांश पाए जाने वाले जीव-जन्तुओं की प्रजातियाँ हैं – तेन्दुआ, नेवला, सियार, देशी लोमड़ी, देशी सूअर, देशी मृग या चिंकारा, काला हिरण, नील गाय, भौंकनेवाला हिरण, चार सींगोंवाला हिरण, चितकबरा हिरण या चीतल और सांभर।

जलवायु – इस क्षेत्र में लगभग शुष्क शीत ऋतु के

साथ उष्णकटिबंधीय जलवायु होती है। इस क्षेत्र में मानसूनी वर्षा होती है और वर्ष में लगभग १३० से.मी. वर्षा होती है।

स्थल – उत्खनन स्थल पर विभिन्न आकारों के चार प्रकार के मिट्टी के टीले विद्यमान हैं। स्थल के पश्चिमी भाग में परिखा बहती है। विभिन्न आकार और ऊँचाई के चार टीलों की श्रेणियों के रूप में नदी के किनारे-किनारे लगभग ५ एकड़ के क्षेत्र में यह प्राचीन जमाव के रूप में विस्तारित है। इस भूमि को स्थानीय भाषा में किला कहते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि यह जगतपाल का किला है। टीला नं. १ स्थानीय रूप से रावण भाटा के रूप में जाना जाता है। इस टीले से ही उत्खनन आरम्भ हुआ, उसका सन्दर्भ आधार १ है, जो टीले का मध्य केन्द्र है और कन्टूर का उच्चतम बिन्दु है।

वर्ष २०१२-१३ सत्र में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग ने उत्खनन हेतु लाइसेंस की स्वीकृति दी। संस्कृति और पुरातत्त्व संचालनालय, छत्तीसगढ़ शासन ने उत्खनन किया। उत्खनन हेतु प्रत्येक टीले को दस्तावेजित कर क्रम संख्या प्रदान की गई है। उत्खनन से क्रमश: निम्नलिखित सांस्कृतिक काल के अवशेष प्राप्त हुए हैं –

१. कुषाण-पूर्व काल

२. कुषाण काल

३. सातवाहन काल

४. सरभपुरिया (गुप्त) काल

५. गुप्तोत्तर (कल्चुरि) काल

१. कुषाण-पूर्व काल – इस उत्खनन में कुषाण-पूर्व अवधि के कुछ संकेत मिले हैं। इस सांस्कृतिक चरण में चमकीले काले मिट्टी के बर्तन, जो चमकीले दानेदार हैं तथा काले चिकने सिरामिक पात्र पाए गए हैं। इस सांस्कृतिक चरण को कुषाण काल से पहले का माना गया है। खंदकों से कुछ हड्डियों से बने उपकरण और हाथी-दाँत से बने औजार भी मिले हैं। मिट्टी के टीले के नीचे से मुद्रांकित सिक्के की भाँति ही कुछ ताँबे के चौकोर सिक्के भी प्राप्त हुए हैं।

२. कुषाण काल – इस सांस्कृतिक चरण में कुषाण कालीन सिक्के, मोहरें, पकाई हुई मिट्टी की बनी छोटी मूर्तियाँ और धातु या चीनी मिट्टी के बने बर्तन प्राप्त हुए हैं। YB2 खंदक से कुषाण काल से पूर्व की कुछ सांस्कृतिक वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। इस खनन कार्य में कुछ चीनी मिट्टी की बनी वस्तएँ जैसे नक्काशीदार पात्र, कटोरे, लौह उपकरण, ताम्र वस्तुएँ और पकाई हुई लाल मिट्टी की बनी मणिकाएँ और मूल्यवान पत्थर प्राप्त हुए हैं। लगभग १.५ मीटर की गहराई में इस सांस्कृतिक काल की वस्तुएँ प्राप्त हुईं और लगभग ४ मीटर की गहराई तक ये मिलती रहीं। चीनी मिट्टी की वस्तुएँ जैसे काले चिकने पात्र, काले और लाल पात्र, लाल चिकने पात्र आदि इस सतह पर पाए गए। कटोराकार प्याले, हस्तशिल्प, झारा आदि भी पाए गए।

इस काल की सांस्कृतिक धातुएँ पूरे टीलों में मिली हैं। इसमें कुषाणकालीन लाल पकी मिट्टी के बर्तन, सिक्के और विलक्षण बर्तनों का मिलना अत्यधिक प्रामाणिक है। लाल मिट्टी के बने पात्र, लाल चिकनी मिट्टी से बने पात्र, कटोरे जिसमें वक्रित चक्र हैं, झारे, शीशी के आकार की बोतलें, स्याही पात्र और लघु पात्र इस काल की प्रमुख वस्तुएँ हैं।

अवधि निर्धारित करने योग्य वस्तुएँ – उत्खनन में भारी मात्रा में ताँबे से निर्मित सिक्के प्राप्त हुए हैं। एक खंदक YA1, QDIII से लगभग २ मीटर की गहराई में कुषाण कालीन ताँबे के सिक्के मिले हैं। इस काल में विभिन्न खंदकों से भी कुषाण कालीन सिक्के प्राप्त हुए हैं।

इस कालावधि में लाल पकाई हुई मिट्टी (टेराकोटा) के बने मानव और वन्य मूर्तियाँ, मणिकाएँ, अर्ध-बहुमूल्य पत्थर (नगीने), पत्थर की गेंद, काँच की मणिकाएँ, हाथी-दाँत से बनी मणिकाएँ, अस्थि निर्मित नुकीले औजार, लौह और ताम्र वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं।

इस सांस्कृतिक काल में पाषाणीय मुहर (सील) प्राप्त हुई हैं, जिन पर चार वर्ण ब, म, स, द उत्कीर्ण हैं। इनके अलावा मुहर के ठीक नीचे छह-गोलाकार बिन्दुएँ भी अंकित हैं। यह लिपि कुषाण-पूर्व अथवा कुषाण ब्राह्मी है।

YB1 के QDIII से एक कुषाण सिक्कों का संग्रह भी प्राप्त हुआ है। यह संग्रह एक दीवार के किनारे से प्राप्त हुआ है। भारी संक्षरण के कारण सिक्के आपस में मिश्रित हो गए हैं। इस संग्रहण में लगभग २५ ताम्र कुषाण सिक्के सम्मिलित हैं। ये सिक्के कनिष्क और हुविस्क शासक के हैं। इसके अलावा विभिन्न खंदकों से इस सतह से कुषाण कालीन ताम्र-सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। एक खंदक से पात्रों से भरा एक बड़ा गड्डा मिला है। एक खंदक से ३ मीटर की गहराई में एक ताम्र कुषाण सिक्का भी मिला है। इसके अलावा बीस ताम्र कुषाण सिक्के प्राप्त हुए हैं।

३. सातवाहन काल – इस काल से सातवाहन सिक्के और टेरकोटा (लाल पकाई हुई मिट्टी से निर्मित पात्र) के साक्ष्य प्रमाणित हुए हैं। इस उत्खनन में बहुत से सातवाहन सिक्के और चीनी मिट्टी के बर्तन मिले हैं। इनके अलावा मिट्टी से निर्मित एक लटकन मुहर भी पाई गई। इस लटकन मुहर में ब्राह्मी वर्ण 'म' उत्कीर्ण है। इस मिट्टी की मुहर के उपरी भाग में लटकाने के लिए एक छिद्र बना है। उत्खनन में गौतमी पुत्र सतकर्णी के सिक्के भी मिले हैं।

४. सरभपुरिया (गुप्त) काल – उत्खनन से इस काल की तीन स्वर्ण मुद्राएँ मिली हैं। यह सांस्कृतिक चरण सरभपुरिया से सम्बन्धित है, जो गुप्त साम्राज्य के बहुत ही समकालीन है। लगभग ५० सेमी. की गहराई में इस काल के सोने के सिक्के (स्वर्ण मुद्रायें) मिले हैं। इन तीन सोने के सिक्कों में से एक बड़ा सोने का सिक्का महेन्द्रादित्य का है जबकि अन्य दो स्वर्ण सिक्के प्रसन्नमात्रा के हैं। ये स्वर्ण मुद्राएँ विभिन्न खंदकों से मिली हैं। इस सांस्कृतिक स्तर से गुप्त ब्राह्मी में उत्कीर्ण एक पाषाणीय लटकन मुहर भी मिली है।

५. गुप्तोत्तर (कल्चुरि) काल – इस सांस्कृतिक चरण को मोहरों (सिक्कों), भवनों तथा मूर्तिकलाओं की कुछ परवर्ती अवधि के साक्ष्यों द्वारा परिभाषित किया गया है। इस अवधि में कल्चुरी साम्राज्य के जज्ज्याल देव के ताँबे के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। इस संस्कृति में चीनी-मिट्टी के उद्योग यथा गहरे लाल रंग के पात्र, लाल और काले रंग के पात्र आदि भी प्राप्त हुए हैं।

संरचनात्मक गतिविधियाँ – उत्खनन से इस काल के बहुत पुरावशेष मिले हैं, जो संरचनात्मक काल के हैं। अन्य पूर्व ऐतिहासिक स्थलों की तुलना में इस अवधि की सभी संरचनाएँ पाषाण से बनी हुई हैं। भवन-निर्माण में ईंटों का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है। सभी खंदकों में ईंटों का प्रयोग केवल नाली-निर्माण में किया गया है और बाद में भवनों में हुआ है। अत: इस काल में निर्माण कार्य में पत्थरों का उपयोग बहुत हुआ है। खंदक XA1 और XA2 में तीन कमरों की दीवारें पत्थर की बनी हैं। इनमें से दो कमरों में चूल्हे बने हुए मिले हैं। अन्य खंदकों में कमरों, बरामदों और फर्शों के साथ मुख्य दीवारें मिली हैं।

भौतिक संस्कृतिवाद

मणिकाएँ – इस स्थल से बहुत सी अर्ध-बहुमूल्य पाषाणीय मणिकाएँ मिली हैं। गोमेद और इन्द्रगोप आदि की मणिकाएँ पाई गई हैं। इन मनकों का संग्रह कम संख्या में हुआ है। मूलत: ये मनके विभिन्न आकारों, जैसे अण्डाकार वृत्ताकार आदि के होते हैं।

सिरामिक (चीनी मिट्टी) – यह तरीघाट स्थल मृत्तिका उद्योग, चिकनी मिट्टी के बर्तनों के उद्योग में बहुत ही समृद्ध है। यहाँ बड़ी संख्या में सिरामिक उद्योग स्थापित हैं। महीन कलाकृति के साथ काले चिकने पात्र यहाँ की विशेषता है। कुछ विशिष्ट कुषाण पात्र भी यहाँ पाए जाते हैं। विभिन्न आकारों के फूलदान, कलश, दस्तकारी, कटोरा आदि पाए गए हैं। विभिन्न प्रकार की सिरामिक परम्पराएँ जैसे काले चिकने पात्र, लाल चिकने पात्र, काले-लाल पात्र और धूमिल पीले रंग के पात्र आदि इनमें सम्मिलित हैं। ये पात्र विभिन्न आकार-प्रकार में पाए गए हैं।

उत्खनन में विपुल मात्रा में अस्थियाँ भी मिली हैं, इनकी पहचान और अवधि की खोज जारी है। कुछ अस्थियों का संग्रह भूमि की ऊपरी सतह से और कुछ अस्थियाँ खंदकों की विभिन्न परतों से मिली हैं। अस्थियों की प्रकृति और स्थिति से यह प्रतीत होता है कि इनकी अवधि प्राचीन ऐतिहासिक काल से भी पहले की होगी। काफी संख्या में टेराकोटा (पकाई हुई लाल मिट्टी) से निर्मित आकृतियाँ भी प्राप्त हुई हैं। ये टेराकोटा लघुमूर्तियों और चर्म-रबर आदि के रूप में मिले हैं। ○○○

विवेकानन्द रथ का छत्तीसगढ़ प्रवास

एक रथ-यात्री की डायरी से

बिलासपुर में स्वामी विवेकानन्द रथ का स्वागत

३ फरवरी, २०१४ रामा वैली कॉलोनी, बिलासपुर में १०.१५ बजे रथ के प्रवेश करते ही रथ का स्वागत रामा वैली कॉलोनी में श्रीमती पुष्पा द्विवेदी और वहाँ के गणमान्य नागरिकों द्वारा किया गया।

विवेकानन्द उद्यान, बिलासपुर – स्वामीजी का रथ १०.३० बजे सीधे विवेकानन्द उद्यान पहुँचा। वहाँ रथ को शोभा-यात्रा के लिये फूलों से सजाया गया। वहाँ पहले से ही कई विद्यालयों के बच्चे उपस्थित थे। वहाँ की सभा को डॉ. राजकुमार, श्रीमती कल्याणी जैन, श्री नवीन सिंह, श्री सुरेश चन्द्राकर और गोपेश द्विवेदी जी ने सम्बोधित किया। स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने रथ-भ्रमण के उद्देश्य से बच्चों को अवगत कराया। कलाकारों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये। स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने प्रात: ११.३० बजे रथ की शोभा-यात्रा की हरी झंडी दिखायी। शोभा-यात्रा सिम्स चौक, सदर बाजार, गोल बाजार, सिटी कोतवाली चौक होते हुए लाल बहादुर शास्त्री शाला प्रांगण में पहुँची। इस दौरान निर्धारित ५ स्थानों पर रथ का स्वागत किया गया।

देवकीनन्दन, दीक्षित सभागार, बिलासपुर में सार्वजनिक सभा – उसके बाद अपराह्न १.३० बजे देवकीनन्दन दीक्षित सभागार में सार्वजनिक सभा का आयोजन था, जिसकी अध्यक्षता स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने की। सभा में डॉ. लक्ष्मण प्रसाद मिश्र, से. नि. प्राध्यापक रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर, श्री गौरीदत्त शर्मा, कुलपति, बिलासपुर विश्वविद्यालय और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने व्याख्यान दिए। रामकृष्ण सेवा समिति के अध्यक्ष डॉ. ओंकार शर्मा जी ने स्वागत भाषण और आश्रम के सचिव श्री सतीश द्विवेदी जी ने धन्यवाद ज्ञापन किया। उसके बाद सबको भोजन का पैकेट दिया गया। इसके बाद रथ को श्रीरामकृष्ण सेवा समिति आश्रम, कोनी, बिलासपुर (छ.ग.) के पावन प्रांगण में सायं ३.३० बजे से सन्ध्या ८ बजे तक जन-दर्शनार्थ रखा गया।

मंगलवार, दिनांक ४ फरवरी २०१४

आज रथ का स्वागत चाँपा में विवेकानन्द युवा महामंडल के सदस्यों द्वारा बड़े जोश से किया गया। रथारूढ़ स्वामी विवेकानन्द जी की आरती एस. के. पाढ़ी जी ने अपने साथियों के साथ किया। रैली और सभाएँ हुईं, जिसमें श्री बी. दीवान, स्वामी सोमेशानन्द जी ने व्याख्यान दिए और बच्चों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम किए। वहीं से रथ शाम को कोरबा के लिये प्रस्थान किया।

कोरबा में रथ का स्वागत

बुधवार, दिनांक ५ फरवरी २०१४

श्रीमती आशा वरदे और उनके सहयोगियों के नेतृत्व में कोरबा के विभिन्न स्कूलों – दिल्ली पब्लिक स्कूल, केन्द्रीय विद्यालय, शा.उ.मा. विद्यालय, गायत्री उ.मा. विद्यालय, विद्युत मंडल उ.मा. विद्यालय, रामपुर कन्या उ.मा. विद्यालय, निर्मला उ.मा. विद्यालय, दयानन्द, ब्लू वर्ड उ.मा. विद्यालय, पब्लिक स्कूल, संस्कार भारती, डी.ए.वी. एन.सी.डी.सी. उ.मा.स्कूल, अम्बेडकर उ.मा. विद्यालय, केरियर पब्लिक स्कूल, डी.डी.एम. स्कूल आदि में रथ का भव्य स्वागत हुआ। सर्वत्र भव्य नृत्य, गान, पूजन हुआ और १५० दीप प्रज्ज्वलित कर रथ का नगर भ्रमण हुआ। बृहस्पतिवार, दिनांक ६ फरवरी २०१४ को प्रात: रथ अम्बिकापुर के लिये प्रस्थान किया। रास्ते में **कठघोरा** में रथ का स्वागत हुआ।

बृहस्पति–शुक्रवार, दिनांक ६,७ फरवरी २०१४ को अम्बिकापुर में रथ का स्वागत

विवेकानन्द विद्या निकेतन अम्बिकापुर के सचिव स्वामी तन्मयानन्द जी और अश्वमेध कॉलेज के निर्देशक श्रीकान्त दूबे के साथियों के तत्त्वावधान में इंजिनियरिंग कॉलेज, लखनपुर, मंजु साह कम्प्यूटर इंस्टीट्युट, अश्वमेध कालेज, के. आर. टेक्निकल कालेज, विवेकानन्द विद्यानिकेतन, साईं बाबा आदर्श महाविद्यालय, सेन्ट जेवियर्स, सेन्ट जॉन्स, अम्बिका मिशन स्कूल, शा. कन्या उच्चतर मा. विद्यालय, होली क्रास महाविद्यालकय, शा.मा. शाला, रघुनाथपुर, एन.एस.एस. कैम्प, लमगाँव में रथ का भव्य स्वागत हुआ।

बगीचा में रथ का स्वागत

शनिवार, दिनांक ८ फरवरी २०१४

रामकृष्ण आश्रम, बगीचा के सचिव स्वामी ज्योतिर्मयानन्द जी के तत्त्वावधान में स्वामी विवेकानन्द रथ का सुन्दर स्वागत रामकृष्ण आश्रम में हुआ, बगीचा बस स्टैंड में जन सभा हुई और नगर-भ्रमण कराया गया। किया गया। **रविवार, दिनांक ९ फरवरी २०१४** जशपुर होते हुए राँची, बिहार हेतु प्रस्थान किया। **(समाप्त)**
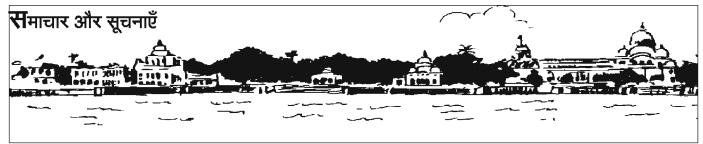
नेपाल और भारत में भूकम्प राहत कार्य

अप्रैल २०१५ में नेपाल और भारत के कुछ भागों में आए प्रचण्ड विनाशकारी भूकम्प से प्रभावित क्षेत्रों में रामकृष्ण मिशन के द्वारा प्राथमिक राहत कार्य जारी है।

रामकृष्ण आश्रम, **काठमांडु** ने रामकृष्ण संघ के मुख्यालय **बेलूड़ मठ** की सहायता से एक सामूहिक रसोईघर स्थापित किया, जिसके द्वारा समीपवर्ती क्षेत्र के ७५० आपदाग्रस्त लोगों को भोजन दिया गया। **२८ अप्रैल** को काठमांडु आश्रम ने थानकोट (काठमांडु) के अरविन्दो अनाथालय के १३० अनाथ बच्चों को १०० कि.ग्रा. चावल, २० कि.ग्रा. दाल, ५ कि.ग्रा. नमक, ५ लीटर खाद्य तेल, ३ कि.ग्रा. शक्कर, ३ पैकेट चॉकलेट्स और ३० पैकेट बिस्कुट का वितरण किया। **२९ अप्रैल** को आश्रम के द्वारा ७०० कि.ग्रा. चिउड़ा, ७०० पानी-बोतल, ५०० बिस्कुट पैकेट – काठमांडू से २० कि.मी. दूर साको गाँव में तथा ८०० कि.ग्रा. चिउड़ा, ५०० पानी-बोतल, ५०० बिस्कुट पैकेट – काठमांडू से ४० कि.मी. दूर शंकरपुर नगरपालिका में बाँटे गए। **३० अप्रैल** को ७०० पैकेट सूखे खाद्य-पदार्थ, ५०० पानी-बोतल, ५०० बिस्कुट पैकेट का वितरण भक्तपुर क्षेत्र के लिवाली, कमल बिनायक और घाटे इलाकों में किया गया। जल तोल स्थित महेश्वरी क्रीड़ागण की राहत छावनी में २०० चावल के पैकेट (प्रति २ कि.ग्रा.), १०० दाल पैकेट (प्रति १०० ग्रा.) बाँटे गए। इसके अलावा आश्रम ने अति आपदाग्रस्त जिलों में बृहत् सर्वेक्षण किया और २ मई को दुवाचर, अपर मेलुन्ची, अरिगाँव, पनाउती, तोखा, बालाजु, समाकोशी और गैरीधारा इलाकों के ३६० परिवारों को ९५० कि.ग्रा. चिउड़ा, ५० कि.ग्रा. शक्कर, ३० कि.ग्रा. गुड़, १०५० कि.ग्रा. चावल, १६० कि.ग्रा. दाल, २१६ कि.ग्रा. बिस्कुट, २३३ लीटर खाद्य तेल, ९५ कि.ग्रा. नमक और १५० कि.ग्रा. आलू का वितरण किया।

रामकृष्ण मठ, **लखनऊ** द्वारा नेपाल के गोरखा जिले के अति दुर्घटना ग्रस्त क्षेत्रों में राहत कार्य आरम्भ किया गया। आश्रम द्वारा खरे, बालूशोरा, मोहतर और गंखु विस्तारों में चार राहत शिविर स्थापित किए गए। इन राहत शिविरों द्वारा ६०० आपदाग्रस्त लोगों को सूखा खाद्य पदार्थ, मोमबती, माचिस बॉक्स आदि बाँटे गए। आश्रम द्वारा सुदूर क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर चिकित्सकीय सेवा भी दी जा रही है। लगभग ३०८ रोगियों की चिकित्सा जाँच करवाई गई, जिसमें १४ लोगों की हालत बड़ी गम्भीर थी। इन सेवाकार्यों में हमें स्थानीय लोग एवं सुरक्षा दलों से काफी सहयोग मिल रहा है।

रामकृष्ण मिशन, **दार्जीलिंग** द्वारा नेपाल के सिन्धुली जिले में राहत कार्य आरम्भ किया गया। आश्रम ने आपदाग्रस्त क्षेत्रों में बृहत् सर्वेक्षण कर सूखे खाद्य पदार्थ, प्राथमिक चिकित्सा आदि की त्वरित सेवा पहँचाई।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, **पटना** ने बिहार के रक्सौल में राहत कार्य आरम्भ किया है। भूकम्प से प्रभावित सीमावर्ती क्षेत्रों में स्थित १२०० शरणार्थी-परिवारों को १२०० पानी-बोतल, १००० केक-पीस, १००० बिस्कुट-पैकेट और १०० प्रोटीन-पाउडर पैकेट बाँटे। **पटना** और **मुजफ्फरपुर** आश्रम के संयुक्त तत्त्वावधान में दरभंगा मेडिकल कॉलेज और मोतीहारी सदर अस्पताल में भर्ती भूकम्प-पीड़ित लोगों को पानी बोतल, मल्टी-विटामिन टॉनिक, बिस्कुट, केक आदि का वितरण किया गया।

इसके अलावा भूकम्प-पीड़ित व्यक्तियों को तार्पोलिन शीट्स, कम्बल, टेन्ट्स आदि के वितरण की व्यवस्था की जा रही है। राहत कार्य अपनी पूरी गति से चल रहा है और परिस्थिति अनुसार इसका और भी विस्तार किया जाएगा।

रामकृष्ण मिशन, वडोदरा में स्मारिका विमोचन

स्वामी विवेकानन्द जी की १५०वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में वैश्विक संस्कृति के विश्वनायक स्वामी विवेकानन्द नामक स्मारिका का विमोचन रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष और वरिष्ठ न्यासी स्वामी गौतमानन्द जी के कर-कमलों से १२ अप्रैल, २०१५ को हुआ। इसमें लगभग २०० चित्र और डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम, इरीना बोकावा, अन्ना हजारे आदि के महत्वपूर्ण लेख हैं।

माननीय प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी का बेलूड़ मठ दर्शन

१० मई, २०१५ माननीय प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी बेलूड़ मठ के पवित्र वातावरण में लगभग एक घण्टे तक रहे। उन्होंने मठ-प्रांगण में स्थित भगवान श्रीरामकृष्ण देव, श्रीमाँ सारदा देवी, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द जी के मन्दिरों में जाकर प्रणाम किया। स्वामी विवेकानन्द के कक्ष में उन्होंने लगभग २५ मिनट ध्यान किया। ९ मई, २०१५ की शाम को सेवाप्रतिष्ठान में जाकर संघाध्यक्ष स्वामी आत्मस्थानन्द जी से भेंट की। ○○○